अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-08, 1-15 दिसंबर, 2016

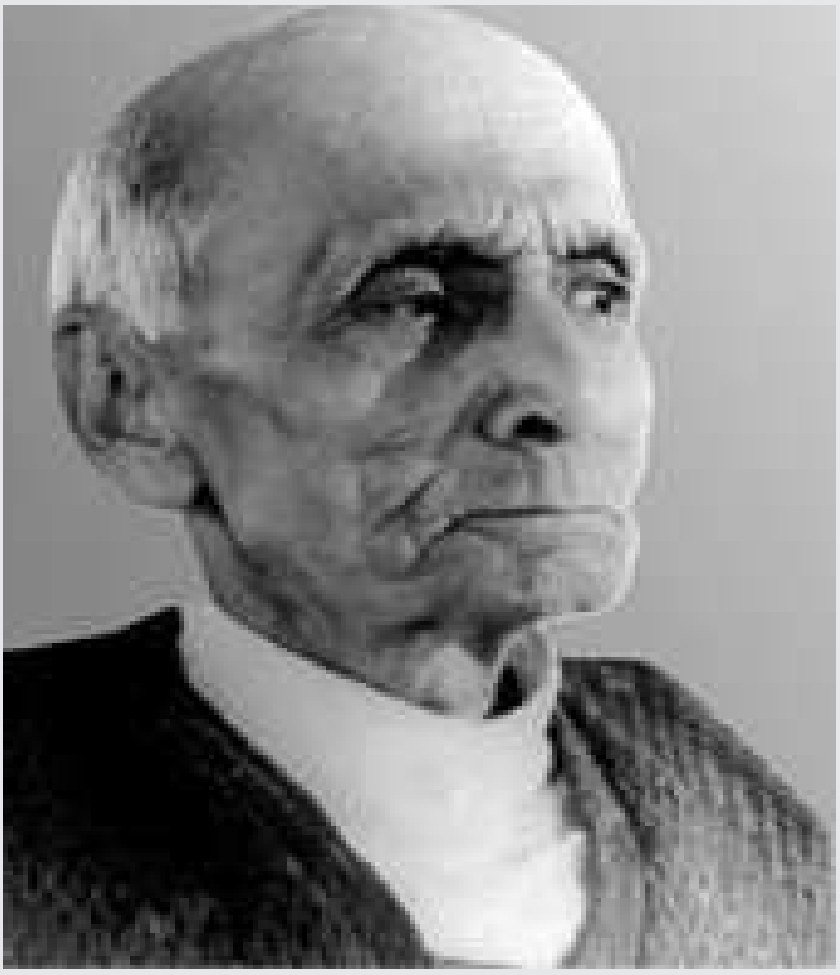

01 दिसंबर : पुण्य-तिथि पर दादा को विनम्र श्रद्धांजलि

- नोट बंदी के लक्ष्यपूर्ति की सम्भावनाएं
- जेपी पिता और धर्माधिकारी दादा
- धर्म की प्रतिष्ठा
- स्वराज के लिए आवश्यक है निर्भयता
- नोटबंदी : औरतों के आजाद-कोष की नीलामी
- छेड़खानी : क्या समाज का हर व्यक्ति गुण्डा है?
- लड़कियों को सताने वाले डरपोक गुण्डे हैं
- गांधी और संघ : नौ दशकों का विरोधाभासी सफर

''धर्म की रक्षा के लिए क्या गुण्डों की एक स्थाई फौज रखनी चाहिए?...कृपया धर्म में बाहुबल को दाखिल न करें।...न तो भीम की गदा और न अर्जुन का गांडीव यथार्थ रूप से धर्म की रक्षा के साधन हो सकते हैं।''

- दादा धर्माधिकारी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 08, 1-15 दिसम्बर, 2016

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. नोटबंदी के लक्ष्यपूर्ति की संभावनाएं... 2
2. जेपी पिता और धर्माधिकारी दादा... 3
3. धर्म की प्रतिष्ठा... 4
4. स्वराज के लिए आवश्यक है... 8
5. नोटबंदी : औरतों के आजादकोष की... 10
6. क्या समाज का हर व्यक्ति गुण्डा है?... 12
7. लड़कियों को सताने वाले डरपोक... 13
8. गांधी और संघ नौ दशकों का... 14
9. दिल्ली अभी भी दूर है... 16
10. लघु-कथा : नदियां और समुद्र... 17
11. गंगा-उद्गम में हरे पेड़ों पर कुल्हाड़ी... 18
12. गतिविधियां एवं समाचार... 19
13. कविता : खूंटों के जंगल में... 20

विशेष संपादकीय

नोटबंदी के लक्ष्यपूर्ति की सम्भावनाएं

नये नोटों अर्थात एक हजार रुपये व पांच सौ रुपये के नोटों का चलन सरकार ने बंद कर दिया है। दावा किया गया है कि इससे तीन प्रमुख लाभ होंगे। आतंकवादियों का आर्थिक आधार खत्म होगा, जाली नोटों की खेप बंद हो जायेगी और काला धन समाप्त हो जायेगा।

जहां तक आतंकवादियों के आर्थिक आधार का सवाल है, हमें यह समझना होगा कि इसके तीन मुख्य आधार हैं। पहला, अंडरवर्ल्ड से संबंध—यानी जो बड़ा काला कारोबार वैश्विक स्तर पर दाउद इब्राहीम जैसे लोग चला रहे हैं तथा जिनका बड़े स्तर के अपराधियों से सीधा संबंध है, वे लोग आतंकवादियों के आर्थिक स्रोत हैं—कहीं प्रत्यक्ष रूप से और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से। इनका मुख्य कारोबार तस्करी, हवाला (यानी रुपये का अन्य मुद्राओं में कालाबाजारी के अंतर्गत परिवर्तन) तथा भू-सम्पत्ति में बिल्डरों के माध्यम से निवेश है। इन सारे अवैध कामों में छद्म नामों को आगे रखकर कारोबार किया जाता है। बिना अंडरवर्ल्ड की कमर तोड़े, आतंकवादियों के आर्थिक स्रोत को खत्म करने की बात बेमानी है। इसके केवल प्रचार करने व सस्ती लोकप्रियता पाने का माध्यम बनाया जा सकता है। आज दुनिया में आईएसआईएस के माध्यम से जिस आतंकवाद को फैलाया जा रहा है, उसमें दो बातें और शामिल हैं—एक तेल के कुंओं पर कब्जा कर तेल द्वारा धन बनाना तथा दूसरे हथियारों का कारोबार। पाकिस्तान समर्थित आतंकवादियों को अभी इन स्रोतों से मदद नहीं मिल रही है। किन्तु भविष्य के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता है।

जहां तक जाली नोटों का सवाल है। यह समस्या केवल भारतीय मुद्रा के लिए नहीं है। दुनिया की तमाम सशक्त मुद्राओं के जाली नोट प्रचलन में हैं। इनमें डालर व पौंड भी शामिल हैं। सभी पूंजीवादी देशों में, अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा टैक्स चोरी व काले कारोबार के रूप में चलता है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा स्वयं में कानूनी रूप से अवैध होता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के इस दोष को, पूंजीवाद के अंतर्गत या पूंजीवाद को और बढ़ा कर दूर नहीं किया जा सकता है। भारत में भी नये जाली नोट 6 महीने से दो वर्ष के अंदर आ जायेंगे। जाली नोट का कारोबार वैश्विक है। इसके खात्मे के लिए कुछ अन्य प्रकार के उपाय अपनाने होंगे। बड़े नोटों के चलन को बंद करने से केवल कुछ समय के लिए पुराने जाली नोट चलन के बाहर हो जायेंगे। नये नोटों के आगमन के 6 महीने—साल भर के अंदर नये जाली नोट आ जाने की संभावना है। जाली नोटों को बनाने की तकनीक में भी निरंतर सुधार होता रहता है, इस कारण एक सामान्य व्यक्ति के लिए, अब असली व नकली नोटों के फर्क को पहचान पाना मुकिश्ल होता जा रहा है।

एक तीसरा लक्ष्य बड़े नोटों के चलन को बंद कर काले धन को खत्म करने का है। जानकारों ने इस बात का खुलासा किया है कि काला धन का बड़ा हिस्सा (90% से 95% तक) तीन क्षेत्रों में लगा है। एक विदेशी बैंकों में, स्वयं मोदीजी अपने चुनाव प्रचार में कहा करते थे कि काला धन विदेशों में जमा है। विदेशी बैंकों में व विदेशी सम्पत्ति में लगा काला धन, काले धन का सबसे बड़ा हिस्सा है। ये कैसे भारत आयेगा, इस पर ही ध्यान देना होगा। विदेशों में जो काला धन लगा है, बिना उसे वापस लाये, काले धन के खात्मे की बात करना निरर्थक है। काला धन, जिस दूसरे अन्य क्षेत्र में लगा है, वह भू-सम्पत्ति व अचल सम्पत्ति है। सरकार भारत के अंदर भू-सम्पत्तियों एवं अन्य अचल सम्पत्तियों पर लगे काले धन पर शिकंजा कस सकती है। केवल भविष्य बतायेगा कि ऐसा करने की उसकी राजनीतिक इच्छा शक्ति है या नहीं है। यदि इस पर एक राजनैतिक सहमति बने, तो इस कार्य को जितना जल्दी किया जा सके, उतना अच्छा होगा। काले धन के निवेश का एक तीसरा क्षेत्र सोना व हीरे की खरीदारी में होता है। भारत के अंदर सोने की खरीददारी, और तस्करी से आये सोने की खरीददारी, दोनों इसमें शामिल है। भारत के अंदर सोने की खरीददारी को नियंत्रित किया जा सकता है, किन्तु तस्करी से आने वाले सोने की खरीददारी पर नियंत्रण करने के लिए तस्करी पर शिकंजा कसना होगा।

इस निर्णय का राजनीतिक फायदा कितना होगा यह तो उत्तर प्रदेश के विधानसभा के चुनावों के नतीजे आने के बाद ही पता चलेगा। लेकिन अभी पहला कदम लोगों की परेशानी कम करने की दिशा में होनी चाहिए।

बिमल कुमार

संपादकीय

जेपी पिता और धर्माधिकारी दादा

दादा तो धर्माधिकारी रहे, इसलिए समाज में जो भी विग्रह है उनसे अनुग्रह का रास्ता कैसे निकले, इसके लिए सदा चिन्तन और मनन किया और बड़ी गंभीरता से अपने विचार दुनिया के सामने रखा। समाज का कोई विग्रह नहीं, जिसके लिए उनके पास कोई समाधान न हो। धर्माधिकारी और ऊपर से जातीय ब्राह्मण होने के बावजूद ब्राह्मण की ऐसी परिभाषा की कि वे ब्राह्मण ही न रहे—कुजात ब्राह्मण बन गये।

हमारे वंश में जेपी हमारे पिता और धर्माधिकारी दादा रहे हैं। वैसे तो दादा भी पिता रहे किन्तु मूलतः वे दादा ही रहे क्योंकि उनके पुत्र ने भी उन्हें दादा ही पुकारा। जेपी के व्यवहार से हमारे हृदय में करुणा पैदा होती थी और जीवन उत्सर्ग करने की सीख मिलती थी तो दादा को सुनकर हंसते-हंसते बलिदान करने की सीख। दादा को सुनना प्रेम करने से अधिक रोमांचित होना था। सहरसा/राघोपुर जो मेरी जन्मभूमि है, और जो सन् 1942 की अगस्त क्रांति में जेपी-लोहिया की कर्मभूमि भी थी, बाद में ग्रामस्वराज और '74 के जेपी आंदोलन का सघन क्षेत्र बना, वहां से सर्वोदय कार्यकर्ताओं की एक वंशावली कदमकुआं, पटना और राजघाट, वाराणसी से होते हुए पूरे देश में फैली। इस वंशावली के छायादार वृक्ष विनोबा, जेपी, धीरेन्द्र मजूमदार, दादा धर्माधिकारी, सिद्धराज ढड्ढा, ठाकुरदास बंग, सुमनताई बंग, नारायण देसाई, आचार्य राममूर्ति, बाबूराव चंदावार, कृष्णराज मेहता, सच्चिदानंद, अमरनाथ भाई, रामजी सिंह, रजी अहमद, त्रिपुरारि शरण आदि रहे। तो, तरुण पौध में कुमार प्रशांत, शुभमूर्ति, जानकी, अशोक भार्गव, आशा भार्गव, किशोर शाह, अशोक बंग, अभय बंग, पद्मजा बंग, संतोष भारतीय, वंदना भारतीय, अशोक मोती, कल्पना अशोक, कुमार कलानंद मणि, रमेशचन्द्र शर्मा, प्रेमनाथ, महादेव विद्रोही, भवानीशंकर कुसुम रमण कुमार, नचिकेता देसाई, सुदर्शन आयंगार, किशोरदेश पांडे, उल्लास जाजू, दिनकर चौधरी, टी. के. सोमय्या, अनिल फारसोले, सुधाकर जाधव, मंदाकिनी दवे एवं स्व. गोविन्द और मोहन आदि शामिल रहे।

हमें अपने पुरखों पर इस बात के लिए गर्व है कि दुनिया में मार्क्स-लेनिन-माओ ने चाहे जितनी भी क्रांतियां की हों, उनका प्रभाव-क्षेत्र मूलतः भौतिकी है किन्तु हमारे पुरखों ने जिस सर्वोदय और संपूर्ण क्रांति की नींव डाली, उसमें भौतिक उन्नति ही पर्याप्त नहीं माना गया। इसकी क्रांति दुश्मन को गले लगाना, अत्याचारी को क्षमा करने और गिरे को उठाने की क्रांति है। प्रथम व अंत का एक भाव।

जोहान्सबर्ग स्टेशन पर पोलक ने रस्किन की पुस्तक 'अन-टू दिस लास्ट' गांधी को दी, जिससे गांधी के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हो गया। पुस्तक में वर्णित सभी आदर्शों को अपने जीवन में जीने के एकादश व्रत लेने से जो निचोड़ निकला, उसका ही नाम 'सर्वोदय' है, जिसकी अगली कड़ी में गांधी के बाद विनोबा और जयप्रकाश आये और इसे आगे बढ़ाया। सर्वोदय शास्त्र एवं सर्वोदय दर्शन के प्रमुख प्रवक्ता व विद्वान व्याख्याता के रूप में दादा धर्माधिकारी आये, जिन्होंने न केवल गांधी की दृष्टि को विस्तार दिया बल्कि उसकी सरल, सुबोध, हृदय-स्पर्शी व्याख्या भी की। सर्वोदय का कोई भी मुद्दा उनकी टिप्पणी से छूटा ही नहीं। सर्वोदय दर्शन को सार्वभौम-जीवन-दर्शन बनाने में दादा की बड़ी भूमिका रही। दादा ने तो सर्वोदय को 'सतयुग' की स्थापना का प्रारम्भ कहा। 'अहिंसा' को उसका प्राण और 'सत्याग्रह' को उसकी शक्ति कहा तो 'स्वराज' राजनीतिक आदर्श तथा 'विश्वकुटुम्ब' को अंतिम आदर्श। मनुष्य, संस्कृति, धर्म, सम्प्रदाय, जाति, नारी, सहजीवन, गांव, नगर, वर्ग, भाषा, वर्ण, व्यापार, राज्यसत्ता, हिंसा, अहिंसा, समुदाय, लोकसत्ता, स्वतंत्रता, शिक्षा, पद और पदवी पर दादा के विचार अकाट्य हैं।

दादा 'सर्वोदय' पत्रिका के कुशल एवं विद्वान संपादक भी रहे, जिसमें सर्वोदय की दृष्टि पर उनकी संपादकीय टिप्पणियां, क्रियाशील चिन्तन और ज्ञानबोध की संपदा और धरोहर हैं। गांधीजी द्वारा प्रस्तुत विभिन्न प्रवृत्तियों के पीछे कार्यरत सत्य, अहिंसा, स्वदेशी और शरीर-श्रम के दर्शन के विवेचन और विकास के लिए एक पत्रिका की आवश्यकता 1933 में 'गांधी सेवा संघ' की स्थापना के बाद महसूस की गयी। तद्नुसार अगस्त 1938 में 'सर्वोदय' नामक मासिक पत्रिका का शुभारंभ हुआ, जिसके तीन संपादक थे—काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी और किशोरीलाल।

1942 के अगस्त में भारत छोड़ो आंदोलन में सभी नेताओं के साथ दादा को भी बंदी बना लिया गया और 'सर्वोदय' बंद हो गया। 1945 में दादा की जेल से रिहाई हुई। सर्वोदय फिर से चालू करने की जरूरत महसूस हुई, अंततः 1949 में सर्वोदय का पुनर्प्रकाशन शुरू हुआ। विनोबा इसके संपादक और दादा धर्माधिकारी कार्यकारी संपादक बने। दादा ने कहा सर्वोदय का उद्देश्य संसार के मनुष्य के नाम का, मनुष्य के जीने के लिए और फलने-फूलने के लिए अनुकूल बनाना है।

दादा ने गांधी की मानवीय विचार प्रणाली का आधार लेकर अपनी बातें लोगों को समझाने में पूरी ताकत झोंक दी।

सर्व सेवा संघ का मुखपत्र बाद में 'भूदान यज्ञ' का मुखपत्र बन गया। दादा पर सारी जिम्मेवारी आ पड़ी। दादा ने कहा—'सर्वोदय प्रचार का उपकरण नहीं है। वह तो वांङ्मय-तप का साधन है।'

दादा ने सर्वोदय के अंक अप्रैल-मई 1955 के अंक में सर्वोदय को प्रणाम में कहा—सर्वोदय ने अपनी मर्यादा और कक्षा संभालने की कोशिश की। उसका विसर्जन भी, उसकी मर्यादा पालन का ही द्योतक है। दादा के मौनपूर्ण प्रणाम से 'सर्वोदय' का प्रकाशन एकबार फिर रुक गया। बाद में सर्वोदय मासिक का पुनर्जन्म 'सर्वोदय जगत' पाक्षिक के रूप में हुआ, जिसके संपादकों की श्रृंखला में मेरा नाम दादा के चरणों की धूल के समान उपस्थित है, मेरे लिए न केवल खुशी और गर्व का विषय है, बल्कि यह मेरे जीवन में मोक्षप्राप्ति से कम नहीं।

परमपूज्य दादा को, उनकी पुण्यतिथि पर उनके पोते-पोतियों तथा 'सर्वोदय जगत' की ओर से स्मरणांजलि एवं विनम्र श्रद्धांजलि!—**अशोक मोती**

दादा-पुण्यतिथि : 01 दिसंबर

धर्म की प्रतिष्ठा

❑ दादा धर्माधिकारी

धर्म की रक्षा के लिए क्या गुण्डों की एक स्थाई फौज रखनी चाहिए?...कृपया धर्म में बाहुबल को दाखिल न करें।...न तो भीम की गदा और न अर्जुन का गांडीव यथार्थ रूप से धर्म की रक्षा के साधन हो सकते हैं।

जब कभी साम्प्रदायिक दंगे फूट पड़ते हैं, तब हमेशा धर्म की जयजयकार और उसकी रक्षा के नारों से चारों दिशाएं निनादित हो उठती हैं। बड़े-बड़े विवेकी आदमी भी कहने लगता है कि ''धर्म की रक्षा न होगी तो समाज नष्ट हो जायेगा। हमें अपने धर्म की रक्षा के लिए प्राणपण से टूट पड़ना चाहिए। यहां हिंसा-अहिंसा का विवेक करना अनावश्यक और बेमतलब का है। जब धर्म ही नहीं रहेगा, तब आपका अहिंसा और दूसरे सारे सद्‌गुण कहां रहेंगे? आखिर समाज का शरीर ही तो उनका आश्रय स्थान है न?''

इस विचार-धारा के अनुसार वे गंभीरता से यह सुझाव पेश करते हैं कि हमें धर्म की रक्षा के लिए गुण्डों की एक स्थाई फौज रखनी चाहिए। शांति के दिनों में वे शक्ति-संपादन और शक्ति-संवर्धन किया करें और दंगे के मौके पर धर्म की रक्षा के लिए, आक्रमणकारियों को दुरुस्त किया करें।

जरा सोचिये तो बात जँचती नहीं। जो गुण्डे थोड़े-से रुपयों के लिए निरपराध व्यक्तियों की जान लेने को तैयार हो जाते हैं, उन्हें भला, धर्म से क्या वास्ता है? वे तो मतलबी होते हैं। गुण्डों का कोई सिद्धांत या धर्म थोड़े ही होता है? इसलिए, अगर किसी समय उन्हें सारी सत्ता हथियाने का मौका मिला, तो भला वे क्या चूकेंगे? वे एक-दूसरे से सुलह करके दोनों सम्प्रदायों के अमीरों की धन-दौलत लूटने की कोशिश करेंगे।

मतलब, जो लोग धर्म की रक्षा के लिए गुण्डे पर निर्भर रहना चाहते हैं, वे धर्म को तो तजते हैं, लेकिन एक दिन उन्हें अपनी स्वतंत्रता से भी हाथ धोना पड़ेगा। सही तरीका वही है, जो गांधीजी बताते रहे हैं। *धर्म की प्रतिष्ठा किसी अवांतर मूल्य पर निर्भर नहीं है। न तो भीम की गदा और न अर्जुन का गाण्डीव यथार्थ रूप से धर्म की रक्षा के साधन हो सकते हैं। भीमसेन और अर्जुन का बाहुबल धर्म के बिना अप्रतिष्ठित और असफल भी हो सकता है। धर्म की प्रतिष्ठा उस पर अवलंबित नहीं है। इसलिए गांधीजी कहते हैं कि बाहुबल के प्रयोग में भी सभ्यता यानी धर्म को दाखिल करो।* मगर कृपया धर्म में बाहुबल को दाखिल न करो।

धर्मो रक्षति रक्षितः

कुछ विलक्षण व्यक्ति कहते हैं, ''बिना तलवार के धर्म की रक्षा हो ही नहीं सकती। अगर क्षात्रधर्म और क्षात्रतेज न होता, तो धर्म और धार्मिकता इस पृथ्वी तल से कब की उठ जाती। माना कि तलवार की चमक धर्मतेज का फल है, तो भी यह भला कैसे सम्भव है कि तलवार के बिना ही धर्म की रक्षा हो सके? 'यत्र योगेश्वरः कृष्णः' (जहां योगेश्वर कृष्ण है) काफी नहीं है; 'यत्र पार्थो धनुर्धरः' (जहां धनुर्धर पार्थ है) भी चाहिए। योगविद्या और धनुर्विद्या दोनों की सम्मिलित शक्ति ही धर्म की प्रतिष्ठा या आधार है।''

वे कहते हैं *'यतो धर्मस्ततो जयः'* का भी यही अर्थ है। जहां या जिस पक्ष में धर्म होता है, उसी पक्ष की विजय होती है। अन्याय और अधर्म के पक्ष की हार अवश्यंभावी है। जो व्यक्ति न्याय और धर्म की रक्षा के प्रयत्न में रणतीर्थ में वीरगति को प्राप्त होता है, वह हुतात्मा ही समझा जाता है। इसलिए धर्म में हिंसा या शस्त्र-शक्ति का निषेध नहीं है। शर्त केवल इतना ही है कि उनके प्रयोग के पीछे धार्मिक हेतु होना चाहिए।

''अग्नि अपने-आप में अच्छी या बुरी वस्तु नहीं है। कोई उससे शीत-पीड़ितों का शीत-निवारण करेगा और कोई लोगों के घरों में आग लगायेगा। इसमें अग्नि का क्या दोष है? संसार में कोई शक्ति अपने-आप में भली या बुरी नहीं है। हिंसा भी एक दैवी शक्ति ही है। योजक की बुद्धि और योजना-पद्धति के कारण उसमें गुण या दोष आ जाते हैं।''

यह परम्परागत युक्तिवाद है। दलील कोई नयी नहीं है। लेकिन हेरफेर कर नाना रूपों में बार-बार वही पेश की जाती है। इसलिए उसका विचार करना जरूरी है।

प्रश्न यह है कि क्या यह सिद्धांत सच है कि जहां धर्म है, वहीं जय होती है? जरा इसका विश्लेषण कीजिए।

दो युद्धमान् पक्ष हैं। एक पक्ष का सैन्यबल और शस्त्रबल बिलकुल लाजवाब है। परंतु यह पक्ष अन्याय और अत्याचार का है। दूसरों के उचित अधिकारों पर आक्रमण करने के उद्देश्य से वह खुराफात कर रहा है। दूसरा पक्ष शस्त्र-विद्या और व्यूह-रचना में इतना पारंगत नहीं है। है तो शूरवीरों का पक्ष;

परंतु कला और युद्ध-नीति में निपुण नहीं है, तो भी अगर वह धर्म और न्याय का पक्ष है, तो हमारे सिद्धांत के अनुसार उसकी विजय ही होनी चाहिए।

अगर यह सिद्धांत सत्य है कि जिधर धर्म और ईश्वर है उस पक्ष की जय अवश्य होगी, तो यह भी मानना होगा कि शस्त्रास्त्र या सेना अपर्याप्त होने पर भी उस पक्ष की जीत ही होगी। कहा जायेगा कि नहीं, यह कोई निरपवाद नियम नहीं है, अन्यायी और अत्याचारी के शस्त्रबल का प्रतिकार करने के लिए हमें उसकी बराबरी की शस्त्र-शक्ति का प्रयोग करना होगा। अन्यथा हम उसे पराजित नहीं कर सकेंगे।

सरल भाषा में इसका अर्थ होता है कि बाहुबल बाहुबल से ही परास्त किया जा सकता है। जिसका बाहुबल नाकाफी या कच्चा होगा, उसकी हार होगी। बाहुबल को मात देने के लिए हमें उससे बढ़कर बाहुबल कमाना होगा।

अगर यही है तो फिर धर्म की महिमा क्या रही? जब बाहुबल को बाहुबल ही जीत सकता है, तब विजय पाने के लिए धर्म की भला क्या जरूरत रह जाती है?

मतलब यह है कि या तो बाहुबल श्रेष्ठ है या धर्मबल? बाहुबल के बिना धर्मबल पंगु है, यह शस्त्रवादियों के तर्क का परिणाम है। क्योंकि वे नहीं मानते कि जिस पक्ष में धर्मबल होगा, उस पक्ष की शस्त्रबल की न्यूनता के बावजूद भी उसकी विजय होगी। बल्कि वे तो यह कहते हैं कि प्रतिपक्षी के शस्त्रबल से बढ़कर शस्त्रबल का अर्जन हमें करना होगा।

अब यदि उनके कथन का यह अर्थ लिया जाय कि शस्त्रबल की अपेक्षा धर्मबल ही श्रेष्ठ है, तो हम यह पूछना चाहेंगे कि फिर शस्त्रबल की कौन-सी जरूरत रह जाती है? अगर धर्म की सहायता से अल्प शस्त्रबल अधिक शस्त्रबल को विजय कर सकता है, तो केवल धर्मबल यानी शस्त्रबल-विहीन धर्म-तेज की फतह होने में कौन-सी असंगति है?

सारांश, 'धर्मो रक्षति रक्षितः' का यह अर्थ करना कि जिसकी गदा हो, न्याय उसी का होगा, धर्म को भैंस-बराबर समझना है। 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस भले ही हो सके, लेकिन 'जिसकी तलवार उसका न्याय' हरगिज नहीं हो सकता। यहां न्याय या धर्म के रक्षण का अर्थ उसका आचरण है। धर्म की रक्षा अगर हम अपने जीवन द्वारा करेंगे, तो वह भी हमारी त्रुटियों की पूर्ति करेगा और हमारी रक्षा करेगा।

27-5-1941

एक शिक्षाप्रद आख्यायिका

पिछले दिनों महाराष्ट्र के सुविख्यात उपन्यासकार और निबंध-लेखक *श्री वामन मल्हार जोशी* का वर्धा में एक बड़ा ही सार-गर्भित संभाषण हुआ। श्री जोशी अपनी तरुणाई में स्वदेश और *'वंदे मातरम्'* के आंदोलन के सिलसिले में कठिन कारावास की सजा भुगत चुके हैं। उस दिन उन्होंने अपनी जेलयात्रा के कुछ रोचक और उद्‌बोधक अनुभव सुनाये। उनमें से एक प्रसंग की मेरे मन पर गहरी छाप पड़ी है। प्रसंग इस प्रकार है—

श्री वामनराव जोशी को कठोर कारावास का दंड दिया गया था। उनसे काम लेने के लिए और उन पर निगरानी रखने के लिए एक पठान नंबरदार था। उनकी चर्या बड़ी क्रूर, शरीर भारी-भरकम और बर्ताव एकदम प्राकृत था। न वह वामनराव की भाषा समझता था, न वामनराव उसकी भाषा समझते थे। दोनों ने अपनी एक व्यवहारोपयोगी राष्ट्रभाषा बना ली थी, जिसमें शब्दों की अपेक्षा इशारों और संकेतों की अधिकता होती थी। इसी राष्ट्रभाषा में वे कुछ शास्त्रार्थ और धर्म-चर्चा भी कर लिया करते थे। इस चर्चा में वे कट्टर मुसलमान हिन्दू-धर्म और उसके काफिर अनुयायियों को जी-भर के गालियां दे लेता था। केवल बुद्धिवादी वामनराव को उस बल-प्रयोगवादी पठान की मुठमर्दी के सामने हार मान लेनी पड़ती थी।

लेकिन इन दोनों के बंदी-जीवन का एक दूसरा नितांत मधुर और अत्यन्त उदात्त पहलू भी था। वामनराव को चक्की का काम दिया गया था। शुरू-शुरू में बेचारे काम करते-करते अधमरे से हो जाते थे। इस नंबरदार से यह देखा नहीं जाता था। अनुकम्पा से उसका हृदय पिघल जाता था। वह वामनराव को चक्की से उठा देता और स्वयं उनका सारा काम पूरा कर देता। वामनराव की आत्मा उसे दुआ देती थी।

वह विकराल आकार का पठान रोजे रखता था। रोजे के दिनों में भी वामनराव के साथ उसका यही सलूक रहता था। रोजे के दिनों में उसे गेहूं की रोटियां मिला करती थीं और वामनराव को वही जवारी की रोटी। लेकिन यह अनाड़ी और उद्दण्ड पठान जबरदस्ती अपनी रोटियां वामनराव को देता और कहता, 'तुम्हें ये मोटी रोटियां खाते देखकर मेरा जी दुखता है, तुम नाजुक हो; मैं तगड़ा हूं। तुम्हारी रोटियां मैं खा लूंगा, तुम इन्हें ले लो।'

कितना शिक्षाप्रद, कितना उन्नतिकारक, कितना मधुर अनुभव है यह। धर्म की बहस छिड़ते ही जो पठान त्योरियां चढ़ा लेता था। और अनाप-शनाप बकने लगता था, उसी के हृदय में कितनी करुणा, कितनी सहृदयता थी। मनुष्य मात्र के हृदय में बसने वाली करुणा के रूप में ही क्या हमें करुणाघन की कृपा का साक्षात्कार नहीं होता? जब मनुष्य संकटग्रस्त होता है, उस समय हिन्दू-मुस्लिम, पारसी, ईसाई जैसे कृत्रिम भेद काफूर हो जाते हैं, हिन्दू नाम से भी घृणा करने वाले पठान के हृदय में से मानवीय करुणापीयूष का दैवी स्रोत उमड़ पड़ता है और धर्म के कृत्रिम बांध को तोड़ती हुई यह सुरसरिता अप्रतिहत वेग से प्रवाहित होती है। कहां उस पठान का शास्त्रार्थ के वक्त प्रकट

होने वाला वह मानव-द्रोही धर्माभिमान और कहां उसी का यह मनावोचित, सभ्य और शुभ व्यवहार। 14.2.1941

सम्प्रदायवाद का शिकार

स्त्री के संरक्षण की समस्या : राष्ट्रीय, धार्मिक और साम्प्रदायिक विग्रहों की सबसे बड़ी समस्या स्त्रियों के अपहरण की और उन पर होने वाले अत्याचारों की है। कनक और कामिनी वासना तथा आक्रमण के प्रधान विषय रहे हैं। व्यक्तिगत कलहों में इन्हीं दोनों के अपहरण पर सारा जोर रहता है। आज, जब कि जनतंत्र का युग है और स्त्री को पुरुष के साथ बराबरी का नागरिकत्व प्राप्त हो गया है, ऐसी अवस्था में भी दो जमातों, सम्प्रदायों और राष्ट्रों के बीच स्त्रियों के अपहरण और उनके रक्षण का प्रश्न कलह का मूल रहा है। सारे संसार में क्रांति के द्वारा एक अभिनव युग का आरम्भ करने की जिन्हें चिन्ता है, उन लोगों के लिए इस प्रश्न का मूलग्राही अध्ययन और विचार करना अनिवार्य हो गया है।

यहां केवल इस प्रश्न के एक ही पहलू का विचार किया जा सकता है। स्त्री और पुरुष की सामाजिक भूमिका में अनादि परंपरा से जो मूलभूत भेद रहा है, उसी के फलस्वरूप जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में और भिन्न-भिन्न अवसरों पर नानाविध समस्याएं उपस्थित होती हैं।

स्त्री-पुरुष संबंध केवल व्यक्तिगत नहीं है। वह जातीय, कौटुम्बिक और साम्प्रदायिक भी है, वह अनेकविध है और अनेकरूप है। उसके कुछ पहलुओं का किंचित् दिग्दर्शन कराने के लिए एक प्रसंग का उल्लेख करता हूं :—

कौन भला : अंग्रेजों के राज्यकाल में अक्सर यह चर्चा छिड़ जाती थी कि अंग्रेज ज्यादा बुरे हैं या मुसलमान ज्यादा बुरे थे। ऐसी ही चर्चा के सिलसिले में एक दफा एक हिन्दुत्ववादी मित्र बोल उठे कि हम मुसलमानों से अंग्रेजों को कई गुना अच्छा समझते हैं, क्योंकि अंग्रेज सिर्फ हमारी दमड़ी मांगता है, वह हमारी चमड़ी का लोलुप नहीं है। अंग्रेज हमारी औरतें नहीं भगाता। मुसलमान हमें लूटता भी है और हमारी स्त्रियां भी ले जाता है।

साम्प्रदायिकों की दृष्टि में स्त्री की हैसियत : उसकी बात ने मेरे दिमाग में गंभीर विचार-चक्र शुरू कर दिये। मैं फिर से जातिवाद और संप्रदायवाद के भेद की मीमांसा मन ही मन करने लगा और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि संप्रदायवाद और जातिवाद की वृत्ति स्त्रियों के अपहरण के विषय में भी बहुत ही व्यामिश्र और पेंचदार रही है। संप्रदायवादी हमेशा यह चाहता है कि उसके संप्रदाय में अधिक से अधिक स्त्रियां शामिल हों। अपने संप्रदाय में आने वाली स्त्री को वह अपनी धर्मपत्नी बनाने के लिए भी तैयार रहता है, बल्कि उत्सुक भी रहता है। *जातिवादी व्यक्ति अन्य जाति की स्त्री को बिगाड़ भले ही दे, लेकिन उसे अपने कुटुम्ब में दाखिल करने को तैयार नहीं रहता। अन्य जातीय स्त्रियों से वह शरीर-संबंध भले ही कर ले, परंतु विवाह क्वचित् ही करता है।*

जातीयवादी की दृष्टि में : इस दृष्टि से गोरी और काली जातियों के वैवाहिक संबंधों का अध्ययन करना उद्बोधक और रोचक होगा। कई भारतीय पुरुषों की गोरी स्त्रियां हैं। लेकिन काली स्त्रियों के साथ विवाह करने वाले गोरे पुरुषों की संख्या इतनी कम है कि वे उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। थियॉसॉफिकल सोसायटी के श्री जार्ज अरूंडेल, कोटगढ़ (शिमला) के एस. ई. स्टोक्स, डॉ. व्हेरियर एलविन जैसे कुछ गोरे पुरुषों ने काली स्त्रियों से विवाह किया है, लेकिन ये उदाहरण अपवादभूत हैं। हमारे देश में अपने-आप को उच्च जाति के समझने वाले ब्राह्मण कभी-कभी अन्य ब्राह्मणों के घर अपनी बेटी तो ब्याह देते हैं, लेकिन उनकी बेटी को अपने घर लाने के लिए तैयार नहीं होते, क्योंकि वे नहीं चाहते कि उनके घर में इस प्रकार की कोई स्त्री आकर कौटुम्बिक श्रेष्ठता की परंपरा खंडित करे।

जातिवाद और संप्रदायवाद का मेल : मैंने अपने हिन्दुत्ववादी मित्र से कहा : मुसलमान अगर स्त्रियों को भगाता है तो कम से कम वह हमको अपनी बराबरी का तो समझता है, क्योंकि जिस स्त्री को वह भगाता है, उससे निकाह करने के लिए भी तैयार रहता है। अंग्रेज उस स्त्री को भगाने योग्य भी नहीं मानता। ठीक उसी तरह, जिस तरह कि एक कुलीन ब्राह्मण या कुलीन क्षत्रिय अस्पृश्य-स्त्री को भगाने के लायक भी नहीं मानता। अंग्रेज पादरी काली स्त्रियों को ईसाई बनाने के लिए हमेशा तत्पर रहता है, लेकिन वह भी उसे अपने वंश में प्रवेश देने से इनकार केगा। उसकी सांप्रदायिकता उसे दूसरों को अपने संप्रदाय में लाने के लिए प्रेरित करती है, लेकिन उसकी जातीयता उन दूसरे लोगों को अपने कुटुम्ब में दाखिल करने में उसे प्रतिबंध करती है। इसलिए ईसाइयों में काले ईसाइयों और गोरे ईसाइयों के अलग-अलग तबके बन जाते हैं। जातीयता में रक्तशुद्धि का आग्रह होता है और साम्प्रदायिकता में संख्या की अभिवृद्धि की आकांक्षा होती है। यही कारण है कि जातिवाद अनाक्रमणशील प्रतीत होता है और संप्रदायवाद स्वभाव से ही आक्रमणशील जान पड़ता है।

जाति-धर्म की कट्टरता : कुलमर्यादा और जातिमर्यादा की गति और गतिविधि बड़ी गहन और विचित्र है। कुलमर्यादा को मानने वाले लोग दूसरों के यहां अपनी बेटी देना अपनी मानमर्यादा के प्रतिकूल मानते हैं, क्योंकि बेटी वाले का सिर हमेशा नीचे होता है। इसलिए जिसकी बेटी हमारे घर में आयी हो, उसके घर अपनी बेटी ब्याहना हम अपनी मर्यादा के प्रतिकूल मानते

हैं। कहते हैं, जिसने हमारे पैर धोये, क्या हम अब उसके पैरे धोयेंगे? लड़की लेने में कोई हानि नहीं, लड़की देने में हानि है। 'कल्यारत्नं दुष्कुलादपि' लिया जा सकता है। 'परो अपावन ठौर में कंचन तजत न कोय।' परंतु यह नियम स्वजाति तक ही सीमित है, अन्य जाति के लिए वह लागू नहीं है। जाति-धर्म का निरूपण करने वाली पुरानी स्मृतियां अनुलोम और प्रतिलोभ विवाह का विधान तो करती हैं, परंतु अनुलोम विवाह से भी जो प्रजा पैदा हुई हो, उसे पिता की जाति में स्थान नहीं मिलता। सारांश यह कि जाति मर्यादा अन्य जातीय स्त्री को अपनी जाति में दाखिल करा लेने के प्रतिकूल है। यही कारण है कि अपने-आप को श्रेष्ठ मानने वाले बहुत से अतिब्राह्मण अपने से कुछ निकृष्ट ब्राह्मणों के घर अपनी लड़की भले ही ब्याह दें, लेकिन उनकी लड़की अपने घर में नहीं लायेंगे।

सम्प्रदायवादी गिरोहों में दूसरे गिरोहों की स्त्रियों को अपने सम्प्रदाय में येनकेन-प्रकारेण लाने की जो प्रवृत्ति दिखायी देती है, उसकी बुनियाद भी स्त्री की परंपरागत भूमिका में है।

स्त्री का वैशिष्ट्य : उस दिन हैदराबाद के सर्वोदय शिविर में मराठवाड़ा के मुरब्बी कांग्रेसी नेता श्री गुलाबचंद नागोरी ने एक बड़ी मार्मिक बात कही। कहने लगे कि एक बात में स्त्रियों की श्रेष्ठता अहंकारी से अहंकारी पुरुष को भी माननी पड़ेगी। मान लीजिए कि किसी देश में स्त्री-पुरुषों का कत्लेआम हुआ। बड़ी मुश्किल से एक पुरुष जिंदा रह गया, तो फिर से उस देश में प्रजा उत्पन्न होने की कोई आशा नहीं रहेगी। लेकिन कुरुक्षेत्र में जिस तरह घंटे के नीचे एक चिड़िया बची रह गयी, उसी तरह संयोगवश कहीं पुरुष के बदले एक स्त्री ही जीवित रह जाय तो उसके गर्भवती होने की संभावना हो सकती है, जो पुरुष के बारे में सुतराम् अकल्पनीय है। भारतीय युद्ध के पश्चात् जिस प्रकार गर्भवती उत्तरा संतान परंपरा अविच्छिन्न रख सकी थी, उसी प्रकार की संभावना हर स्त्री के विषय में रह सकती है।

समस्या का हल : धर्मांतर के सख्त निषेध में ही : हमारे वृद्ध मित्र की विनोद-भरी बात में एक वस्तुगत-तथ्य निहित है। इसीलिए संप्रदाय-प्रचारक दूसरे संप्रदायों के पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अपने संप्रदाय में लाना अधिक उपयोगी समझते हैं। एक स्त्री के आते ही उनकी सारी संतान अपने-आप पिता के संप्रदाय की बन जाती है। संप्रदायवादी जमातों में स्त्रियों के अपहरण की या उनको फुसलाने की जो प्रवृत्ति पायी जाती है, उसकी जड़ें इतनी गहरी हैं। इस प्रवृत्ति का निर्मूलन केवल कागजी समझौतों और इकरारनामों से नहीं हो सकेगा। उसके लिए संप्रदायवाद का ही अंत करना होगा। जब तक धर्मान्तर को अनुज्ञा रहेगी, तब तक संप्रदायवाद का बीज बना ही रहेगा। इसीलिए सर्वोदय के पिछले अंक में यह उपाय सुझाया था कि किसी भी शर्त पर और किसी भी कारण से धर्म-परिवर्तन की सख्त मुमानियत होनी चाहिए। इस मर्ज की और कोई दवा नहीं है। 7-6-1950

हम चेतें

क्या यह बवंडर है : भारत के विधि-मंत्री विद्वद्वर डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने वर्षों बाद फिर एक बार धर्म-परिवर्तन की गर्भित सूचना कर दी है। हिन्दू-समाज में फिर से कुछ हल्की-सी खलबली मच गयी है। कुछ लोग कहते हैं कि आंबेडकर साहब आयेदिन ऐसी धौंस दिया ही करते हैं। हमने जरा उनके हिन्दू कोड का विरोध किया और उन्होंने हमें धमकियां देना शुरू कर दिया। अपना काम बना लेने की यह एक सिफत है। हम युक्ति प्रवीण आंबेडकर साहब के झांसे में आने वाले नहीं हैं।

दलित मानव के अभिभावक का क्षोभ : दूसरे कुछ लोग इसे नहीं मानते। वे कहते हैं कि *कानून बनाने के बाद भी अछूतों के हिन्दू समाज के साथ त्वरित एकरस हो जाने के लक्षण दिखायी नहीं देते। इसलिए अधीर होकर और तंग आकर आंबेडकर जैसे दलित मानव के अभिभावक अपने मन का क्षोभ प्रकट करते हैं।*

जो हो, हमें तो इस बात का सिद्धांत और व्यवहार की दृष्टि से विचार करके इस बीमारी को जड़-मूल से खतम करने वाली उपाय-योजना करनी चाहिए। बात यह है कि जब तक जातिभेद रहेगा तब तक हिन्दुत्व का स्वरूप निषेधात्मक ही रहेगा। जातियों की बनी हुई कन्था को जब दूसरे समाजों के मुकाबले में रखा जायेगा तब लोग उसे एक पुंज के रूप में देख सकेंगे। लेकिन जहां मुकाबला खतम होगा, हिन्दुत्व भी बिखर जायेगा।

जाति प्रथा : एक अभिशाप : जब तक जाति-भेद रहेगा, यानी जन्मगत प्रतिष्ठा का भाव रहेगा, तब तक निचली जाति के लोगों के लिए जाति में रहना लाभकारी नहीं होगा। इसलिए जाति से छुटकारा पाने की कोई न कोई तरकीब खोजते रहेंगे। सबसे सुलभ मार्ग यही है कि जाति-बद्ध समाज का त्याग कर दिया जाय। इसलिए जब तक जाति रहेगी, तब तक हिन्दू समाज में धर्म-परिवर्तन की भावना भी बराबर बनी रहेगी। केवल कानून से धर्म-परिवर्तन की मुमानियत कर देना काफी नहीं होगा। कानून के पीछे जनता का अनुमोदन भी चाहिए। हिन्दू समाज में से धर्म-परिवर्तन की प्रवृत्ति का अंत तभी होगा, जबकि उसकी आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी।

डॉ. अंबेडकर साहब को भला-बुरा कहने से या अस्पृश्यों को नाम रखने से इस समस्या का समाधान नहीं होगा। जाति-संस्था के कारण ही भारत में संप्रदायवाद इतना उग्र और अजस्र रूप धारण कर सका है। अतः देर से ही क्यों न हो, हमें चेत जाना चाहिए। 9-5-1950 ❑

सर्व-धर्म-समभाव

स्वराज के लिए आवश्यक है निर्भयता

❑ महात्मा गांधी

जिन लड़कों का अभी आपसे परिचय करवाया गया, वे मेरे मित्र और साथी कार्यकर्ता, स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया के पौत्र हैं। वे मेरे लिए सगे भाई के समान थे। इन लड़कों को देखकर मुझे सहज ही उनकी याद हो आयी है और मैं समझता हूं कि उनके बारे में मुझे आपको कुछ बताना चाहिए। सत्याग्रह के दिनों में दक्षिण अफ्रीका में जो हिन्दू और मुसलमान रहते थे, उनमें से एक भी भारतीय ऐसा नहीं था जो बहादुरी और ईमानदारी के मामले में काछलिया की बराबरी कर सके। उन्होंने अपने देश के सम्मान और प्रतिष्ठा की खातिर अपना सब-कुछ बलिदान कर दिया। उन्होंने न अपने व्यापार की चिन्ता की और न अपनी सम्पदा की और न मित्रों की ही, और तन-मन से वे संघर्ष में कूद पड़े। उन दिनों भी हिन्दू-मुस्लिम तकरारें जब-तब होती थीं, लेकिन काछलिया ने दोनों को तुला पर समान रूप से रखा। किसी ने उन पर अपने सम्प्रदाय के साथ पक्षपात करने का आरोप कभी नहीं लगाया।

और उन्होंने देशभक्ति और सहिष्णुता का यह महान गुण किसी स्कूल में या इंग्लैंड में नहीं, बल्कि अपने ही घर में सीखा था, क्योंकि वे गुजराती भी कठिनाई से लिख पाते थे। वकीलों के तर्कों का वे जिस प्रकार उत्तर देते थे उसे देखकर वे आश्चर्य करते थे, और उनकी सामान्य विवेक-बुद्धि अकसर वकीलों के लिए बड़ी काम की होती थी। उन्होंने ही सत्याग्रहियों का नेतृत्व किया, और काम करते हुए ही शरीर-त्याग किया। उनमें अली नामक एक बेटा था, जिसे उन्होंने मेरी देख-रेख में सौंप दिया था। ग्यारह वर्षीय यह बालक अद्‌भुत संयत और निष्ठावान मुसलमान था। रमजान के पवित्र महीने में वह एक दिन का भी रोजा नहीं छोड़ता था और फिर भी, उसके मन में हिन्दू लड़कों के लिए कोई दुर्भाव नहीं था, कोई घृणा नहीं थी। मेरे लिए पिता और पुत्र, दोनों आदर्श व्यक्ति हैं, और ईश्वर करे कि आप उनके उदाहरण से अनुप्रेरित हों।

उन दिनों में, जब हिन्दू और मुसलमान एक प्रतीत होते थे, तथा एक-दूसरे के लिए और अपने देश के लिए, अपना खून बहाने को तैयार थे। मैंने छात्रों से सरकारी स्कूल और कॉलेज छोड़ने की अपील की थी। इतने वर्षों के बाद भी उन लड़कों से, उन शिक्षण-संस्थाओं से, निकल आने के लिए कहने का मुझे कोई दुःख नहीं है, और मेरा दृढ़ मत है कि जिन लड़कों ने मेरी अपील के जवाब में स्कूल-कॉलेज छोड़े, उन्होंने अपनी मातृभूमि की सेवा की, और मुझे विश्वास है कि भारत के भावी इतिहासकार उनके त्याग का सराहनापूर्वक उल्लेख करेंगे।

लेकिन दुःख की बात है कि आज ऐसे मुसलमान हैं जो मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ते हैं, और ऐसे हिन्दू हैं जो मन्दिरों में जाते हैं और पूजा करते हैं, और फिर भी ये दोनों एक-दूसरे के प्रति घृणा से भरे हुए हैं। वे सोचने लगे हैं कि मस्जिद या मन्दिर में जाने के मतलब हैं कि हमें एक-दूसरे से घृणा करनी चाहिए। लेकिन अली, बहुत ही धर्मात्मा व्यक्ति होते हुए भी, ऐसा कभी नहीं सोचता था। मैंने यह कहानी आपको सिर्फ इसलिए सुनायी है कि मैं चाहता हूं कि आपमें से प्रत्येक व्यक्ति महान काछलिया और उनके प्यारे पुत्र अली की तरह सच्चा देशभक्त बने। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आपको उन दोनों के जैसा नेक दिल दे।

हकीमजी ने आपको उस स्मरणीय (11 अक्टूबर, 1920) की याद दिलायी है, जब हिन्दुओं और मुसलमानों ने अपने मतभेदों को भुला दिया था और हमेशा के लिए एक हो गये थे, जब सारे भारत में छात्रों को आमंत्रित किया गया था कि वे सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण-संस्थाओं को छोड़कर निकल आयें। मैं जानता हूं कि यह निमंत्रण देने में मेरा बहुत हाथ था, लेकिन मैं साहस के साथ कहता हूं कि सात साल बाद भी, मुझे उसका कोई दुःख नहीं है और न मैं सोचता हूं कि वैसा करके मैंने कोई बड़ी भूल की थी। मेरा विश्वास है कि जिन्होंने सरकारी स्कूलों में पढ़ाई छोड़ दी थी, उन्होंने देश की बड़ी सेवा की थी। मुझे निश्चय है कि जब भारत के उस काल का इतिहास लिखा जायेगा, तो निःसंदेह इतिहासकार को, लिखना पड़ेगा कि जिन लोगों ने सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार किया था, उन्होंने अपना और अपने देश का बहुत भला किया था।

मुझे उन शानदार दिनों के कुछ चिह्न यहां देखकर खुशी हो रही है, और मुझे बहुत हर्ष है कि आप झंडे को ऊंचा रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। आपकी संख्या थोड़ी है, लेकिन संसार में अच्छे और सच्चे व्यक्तियों की संख्या बहुत ज्यादा कभी नहीं रही है। मैं आपसे कहता हूं कि आप संख्या थोड़ी होने की चिन्ता न करें, बल्कि याद रखें कि आप कितने ही थोड़े हों, लेकिन देश की स्वतंत्रता आप पर निर्भर है। स्वतंत्रता का आपके किताबी ज्ञान प्राप्त करने या यंत्रवत तकली चलाने मात्र से भी कोई वास्ता नहीं है। अगर आपमें वे सब चीजें नहीं हैं, जो भारत की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक हैं तो मैं नहीं जानता कि और किसमें हैं। वे चीजें हैं—ईश्वर का भय मानना और किसी भी मनुष्य से या साम्राज्य कहलाने वाले बहुत से मनुष्यों के संगठन से न डरना। यदि इन दो चीजों की शिक्षा इस संस्था में नहीं प्राप्त की जा सकती तो मैं नहीं जानता कि और कहां की जा सकती है। लेकिन मैं आपके प्रोफेसरों को जानता हूं, मैं हकीम साहब को जानता हूं, और मुझे विश्वास है कि यहां ये दो बुनियादी चीजें बहुत सावधानी के साथ सिखायी जा रही है।

आपकी संस्था की, असंतोषजनक आर्थिक स्थिति की, मैं परवाह नहीं करता। तथ्य तो यह है कि मुझे खुशी है कि हम कठिनाई के साथ गुजारा कर रहे हैं, क्योंकि तब हम अपने रचयिता को और सच्चे मन से याद करेंगे और उससे डरेंगे।

यदि विश्वविद्यालय अच्छा काम कर रहा है तो आपको दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि ईश्वर आपको धन दे देगा।

हकीमजी की यह बात बिलकुल ठीक है कि मेरे लिए दिल्ली आना मुश्किल था। लेकिन आपके पास आना मेरे लिए बड़ी सान्त्वना और राहत देने वाली चीज थी। *मैं आपको खुश करने के लिए नहीं, खुद अपने को खुशी देने के लिए, यहां आया हूं।* मैं यहां एक स्वार्थपूर्ण उद्देश्य से आया हूं, और वह है आपको यह बताना कि *आपके मिलिया के बाहर जो घृणा और जहर का बवंडर चल रहा है, हिन्दू और मुसलमान जो एक-दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं, उन सबके बावजूद, आप लड़के लोग यहां अपने दिमाग ठंडे रखेंगे, अपने रचयिता से विमुख न होंगे, अपने दिलों में घृणा को कोई स्थान न देंगे, तथा अपने देश और देश के धर्मों को विनाश की राह पर जाते देखकर, मन में भी खुश न होंगे। यही एक आशा है जो मुझे आपके पास खींच लायी है।*

आपने ध्यान दिया होगा कि मैंने खादी की तकली के बारे में कुछ नहीं कहा है। उसकी वजह यह है कि जिन दो बुनियादी गुणों के बारे में, मैंने आपसे बात की है, उनके सामने खादी और तकली भी कुछ नहीं हैं। आप तकली चला सकते हैं और खादी पहन सकते हैं, लेकिन मैंने आपसे जो चीजें करने को कहा है, यदि आप उन्हें नहीं करते तो आपकी खादी और तकली व्यर्थ होंगी। लेकिन मुझे विश्वास है कि हकीम साहब ने आपसे खादी पहनने की आवश्यकता के बारे में जो कुछ बताया है, उसे आप भूलेंगे नहीं। आप यह बात ध्यान में रखेंगे कि खादी के जरिये ही हम आज सैकड़ों बुनकरों, धोबियों, बढ़इयों आदि के अलावा 50 हजार कतैयों को रोजी दे रहे हैं। यह मत भूलिए कि इनमें बहुत-से मुसलमान हैं। चरखे के बिना कई जगहों पर मुसलमान औरतें भूखों मर रही होतीं। खादी पहनने के सिवा कोई दूसरा तरीका नहीं है, जिसके जरिए आप गरीब हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर सकें।

देश में, अपने दौरों में, मैं हजारों छात्रों से मिलता हूं। मैं देखता हूं कि वे भद्दी और गन्दी आदतों में फंसे हुए हैं। उनकी चर्चा करता हूं कि वह आपको उन गंदे कामों से बचाये। जब मनुष्य अपने हाथ, आंखों और अपने दिमाग को गंदा कर लेता है तो वह मनुष्य नहीं रह जाता, बल्कि पशु बन जाता है।

हाथ, दिमाग या आंखों से कोई बुरा काम करने से आपको हमेशा बचना चाहिए। यदि हम सच्चे वीर पुरुष बनना चाहते हैं तो हमें सभी स्त्रियों को, उनकी आयु के हिसाब से, अपनी मां, बहन या बेटी मानना चाहिए। किसी स्त्री पर बुरी नजर न डालिये। हमें स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिए, मरने को तैयार रहना चाहिए। मैं ईश्वर से एक बार फिर प्रार्थना करता हूं कि वह आपको इस बुराई से बचाए।

और सबसे बड़ी बात यह है कि आप अपने-आपको शुद्ध और स्वच्छ रखें, प्राणों की कीमत पर भी, अपने वचन को निभाना सीखें, और मैंने जो दृष्टान्त आपके सामने दिये हैं, उनकी याद अपने दिलों में हमेशा ताजा रखें।

मैं छात्रों को चंदे की थैली के लिए धन्यवाद देता हूं और मेरी कामना है कि यह विश्वविद्यालय दीर्घजीवी हो और भारत की आजादी का केन्द्र बने।

(जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली में 2 नवंबर 1927 को दिया गया भाषण) ❑

'सर्वोदय जगत'
के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों से अनुरोध है कि अपने महत्त्वपूर्ण आलेख, रचनाएं, विचार एवं सुझाव पत्रिका के लिए भेजें। – सं.

सामयिकी

नोटबंदी : औरतों के आजादकोष की नीलामी

❑ रवीश कुमार

रवीश कुमार एनडी टीवी से जुड़े वरिष्ठ पत्रकार हैं, जो किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। उनका यह लेख, नोटबंदी को लेकर सामने आये तमाम लेखों में यह संभवतः सबसे अनूठा है और एक ऐसी करुण सच्चाई को हमारे सामने लाता है, जो हमारी खुली आंखों से देखने में नहीं आती। पढ़िए कि इस एक निर्णय से किस तरह हर परिवार की व्यवस्थापिका नारी एकाएक चोरनी सिद्ध हो गयी हैं। **–सं.**

कोसीला, पतिसा, अचरा, नेहाली, लुकई, डबल, कोलउध, कोलवारी, धरोड़, गुप्ती, कुठिया का धन, चोरउका, चोरिता, चोरउधा, खूंट, फाड़ा फूंफी, गांठ पोटली, अड़ी अड़ास...भारत के अलग-अलग हिस्सों में ये शब्द आपको घर-घर में मिलेंगे। आपकी नजर में ये सब अनजान से लगने वाले शब्द होंगे। लेकिन *जब आप इनकी तहों तक जायेंगे तब पता चलेगा कि नोटबंदी के फैसले ने हिन्दुस्तान की करोड़ों औरतों को किस तरह से निहत्था कर दिया है। हम इस नोटबंदी का असर अर्थव्यवस्था की किताबों में खोज रहे हैं। लेकिन मेरी जितनी समझ है उससे यही लगता है कि इस एक फैसले ने करोड़ों औरतों को अपने ही घर में चोर बना दिया है। वे संदिग्ध निगाह से देखी जा रही हैं।* सरकार का फैसला जैसे ही घरों में पहुंचा, वैसे ही बहू-जेठानी, दादी-नानी अपना अपना गुल्लक लेकर आंगन में आ गयी। ऐसे जैसे किसी ने चींटी के बिल में पानी भर दिया हो। किसी के पास दस हजार निकला, तो किसी के पास दो लाख। किसी के पास तीन हजार निकला तो किसी के पास अस्सी हजार। ये औरतों का अपना पैसा होता है। लेकिन अब वह सबका हो चुका था। मर्दों की खुशी देखते बन रही है। औरतों का दुख कोई नहीं देख रहा है। कई साल से बचाये गये, उनके पैसे एक झटके में सरकार और परिवार की निगाह में आ गये। एक झटके में औरतें बिन पैसे के फिर से मर्दों पर आश्रित हो गयी।

किसी भी राजनेता और नारीवादी नेता ने औरतों की इस बेचैनी को आवाज नहीं दी है। घर-घर में बीवियां चोर की तरह देखी जा रही हैं। उनके पैसे पर पति का नियंत्रण हो चुका है। औरतों का यह पैसा चोरी का नहीं है। मगर चोरी के पैसे की तरह घर-घर में पकड़ आया है। *कई साल लगाकर औरतों ने दस हजार से लेकर पांच लाख तक बचाये हैं। अपनी इच्छाओं को मारा है। इन पैसों से वे अपने स्तर पर सामाजिक कार्य व्यवहार करती हैं। मायके से आये भाई को खाली हाथ जाने नहीं देती हैं। अपनी सहेलियों के लिए कभी साड़ी खरीद ली, तो अपनी मां के लिए कुछ सामान, भारत का समाज निहायत ही औरत विरोधी समाज है। इस समाज में औरतें सिर्फ कैलेंडर और त्यौहारों में पूजी जाती हैं। उनका बचत का पैसा ही वह कोना है, जिसके दम वे भयंकर गुलामी के आंगन में आजादी की एक खिड़की बना लेती हैं। आज वो खिड़की बंद हो गयी।*

मैंने ऊपर जिन शब्दों का जिक्र किया है, उनके मतलब एक ही हैं। घरों में वर्षों से दादी, नानी, दीदी, मां, बहू, सास और बेटी नाम की औरतें इस पैसे को को बचा कर रखती आयी हैं। ये इनका पैसा नहीं होता है। ये चोरी का भी नहीं होता है, लेकिन जब इनके आंचल के किसी कोने से चिपका रह जाता है, घर के किसी कोने में पड़ा रह जाता है, तब उस पर से धीरे-धीरे देने वाले का नाम मिट जाता है और इनका अपना पैसा कहलाने लगता है। इन पैसों से कोई दादी बिस्तर पर पड़े-पड़े घर की बहू को कुछ दे देती है, अपनी पोतियों को चुपके से दे देती है। आप शहरी कहेंगे कि दादी बेटे से मांग भी सकती है। मुझे तो हंसी आयेगी, लेकिन फिर भी जवाब देता हूं मां से लेकर दादी तक का अपना स्वाभिमान होता है। कोई नहीं चाहता कि हर बात के लिए किसी से पैसे मांगे किसी को देने के लिए मांगते वक्त ज्यादा झिझक होती है इसलिए बेवा दादी भी आराम से सो लेती है। शादी के घर में नया दूल्हा आशीर्वाद लेने आ भी गया, तो वो बिना किसी से मांगे चुपचाप हजार पांच सौ दे देंगी। इसके लिए भी वह वर्षों से बचाना शुरू कर देती हैं।

हिन्दुस्तान में मुद्रा के चलन को आप सिर्फ अर्थशास्त्र के निजाम से नहीं समझ सकते हैं। औरतों ने सदियों से अपने लिए ये व्यवस्था की है। इस पैसे के दम पर न जाने कितने घरों के आर्थिक संकट दूर हुए हैं। अब ये सारे पैसे बैंकों में पहुंच जायेंगे। बहुत सी औरतों के पास बैंक के खाते तो होते हैं, फिर भी कुछ पैसा स्त्रीधन के रूप में किसी गुप्त स्थान पर रखा होता है। यह पैसा भी समय पर या कहें तो दोपहर के वक्त भारतीय अर्थव्यवस्था को सींचता रहता है। ऐसा नहीं है कि यह पैसा भारतीय अर्थव्यवस्था का हिस्सा नहीं है, बस घर के मर्द की जानकारी में नहीं है। यह पैसा उस मर्द का ही है जो अपनी कमाई पर टैक्स देता है, लेकिन अब दादी नानी के पास बहुत दिनों के लिए अपना पैसा नहीं रहा। गरीब घरों की औरतों पर तो बहुत ही मार पड़ी है।

अब अगर कोई औरत ढाई लाख से

ज्यादा जमा करेगी तो उसे सोर्स बताना पड़ेगा। जरूर कई लोग औरतों के खाते का इस्तेमाल करके काला धन वहां टिका देंगे, लेकिन औरतों का जो पैसा घरों में बरामद हुआ है वो सिर्फ मर्दों से उन तक नहीं पहुंचा है। यह औरतों की अपनी समानांतर अर्थव्यवस्था का परिणाम है। हमारे बिहार में जब कोई औरत विदा होती है, तो दूसरी औरतें उसके आंचल में चावल, हल्दी, दूब, सिंदूर और अपनी क्षमता से दस रुपये से लेकर हजार रुपये तक देती हैं, इसे खोंइचा कहते हैं। हमारी औरतें अपनी आर्थिक सुरक्षा को इन्हीं सब नेमतों से दूसरी औरतों के साथ बांटतीरहती हैं, किसी को मुंह दिखाई में पैसा मिला तो किसी को विदाई में। किसी के बच्चे के मुंह दिखाई में मिलता है तो औरतें उसे तुरंत लंबे समय के लिए जमा कर देती हैं। ध्यान से देखेंगे तो यह पैसा उनके काम कम आता है। आपातकाल में परिवार के ही काम आता है। अब लौटकर नहीं जायेगा। आयेगा भी तो दादी का नहीं रहेगा, परिवार को हो जायेगा।

अब हमारे वित्तमंत्री अरुण जेटली ने कहा कि शादी जैसे पुण्य कार्य को क्यों अपवित्र करना है। लोग चेक से भी पैसे देंगे। अरुण जेटली की इस बात से हैरान हूं। नारीवादी स्त्रियों का समूह अगर औरतों को नहीं जानता है तो क्या हमारे नेता भी समाज को नहीं जानते हैं। वित्तमंत्री ने जरा भी सोचा होता तो ये बात नहीं कहते, शगुन का पैसा देने वालों का अपना एक स्वाभिमान होता है। भले उसकी आर्थिक स्थिति बेहतर न हो, लेकिन जब वह सौ रुपये का शगुन देता है तो दस रुपये का लिफाफा भी खरीदता है, ताकि भीड़ में किसी की नजर न पड़े और सामाजिक दायित्व भी पूरा हो जाए सोचिये, जब वह सौ रुपये या पांच रुपये के चेक काटेगा तो कितनी शर्मिंदगी से गुजरेगा क्या अब मुंह दिखाई और मुंडन के पैसे भी चेक से दिये जायेंगे? *औरतें अपनी मुंह दिखाई के पैसे को आयकर विभाग की किस धारा के तहत बतायेंगी। क्या कोई नानी या सास अपनी नातीन या बहू को पे-टीएम से विदाई के पैसे देगी? शगुन का पैसा दिया ही जाता है कि शादी के घर की थोड़ी बहुत भरपायी हो सके अब घर का मालिक बारात विदा कर बैंक बैंक दौड़ेगा...सौ पचास के अनगिनत चेक भंजाने?*

क्या बनारस और हरिद्वार के पंडों को भी चेक दिया जाए? तब तो मंदिरों में भी चेक और पे-टीएम से दान देने का कानून बनना चाहिए। पंडे अपनी आमदनी का सोर्स क्या बतायेंगे क्या आयकर विभाग दक्षिणा को आमदनी का सोर्स मानता है? मुझे आयकर कानून की जानकारी नहीं है, लेकिन हर आमदनी का सोर्स पता करने की यह जिद उसी तरह से नजर आती है जैसे हमारे राजनीतिक दल अपने चंदे का सोर्स न बताने की जिद पाले रहते हैं। मैं जरा देखना चाहता हूं कि कौन पंडों और मौलवियों से पूछने की हिम्मत करता है। क्या आपने सुना कि पंडों के घर पर आयकर विभाग ने छापे मारे हैं? सरकार समर्थक धार्मिक संगठन ही मुर्दाबाद करने लगेंगे। प्रवचन देना आसान है। वैसे मंदिरों के जरिये बड़ी मात्रा में काला धन के सफेद करने के किस्से सुनाई दे रहे हैं, लेकिन *इस सवाल का जवाब भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर को देना चाहिए कि मुंह दिखाई और मुंडन के पैसे को औरतें किस खाते में दिखायें।* अब हमारा समाज ऐसा है तो है। हम जैसे लोग जो कर्मकांड से दूर हैं वो भी दिखाई-विदाई में कुछ दे ही देते हैं। जब हम कर्मकांड समाप्त करने की बात करते हैं तो लोग गाली लेकर सोशल मीडिया पर कूद पड़ते हैं तो चलिये कर्मकांड को आर्थिक सिस्टम से जोड़ने की बात कर देते हैं। अब से मंदिर मस्जिद में इलेक्ट्रॉनिक तरीके से दान कर्म किये जायें। कीजिए मेरी वाहवाही, करेंगे?

जिस तरह से औरतें मायूस दिख रही हैं, वह अप्रत्याशित है। मुझे पंडों और मंदिरों की बिल्कुल चिन्ता नहीं है। मुझे इस फैसले से औरतों की मनोवैज्ञानिक आजादी के चले जाने की चिन्ता है। यह सही है कि उनका पैसा कहीं खो नहीं गया है नष्ट नहीं हुआ है उनके खाते में रहेगा लेकिन अब वह गुप्त नहीं रहेगा अब वो पैसा पतियों का हो गया परिवार का हो गया। बैंकों का लाखों करोड़ का नॉन प्रॉफिट असेट (एनपीए) हमारी औरतों की वजह से नहीं बना है। उन 57 उद्योगपतियों के नाम बताने में अदालत और सरकार को संकट है, जिन्होंने 85,000 करोड़ रुपये चपत कर लिए लेकिन आम औरतों से पूछा जा रहा है कि उनके पास कहां से पैसा आया। करोड़ों औरतें इस फैसले से अपने परिवार में चोर और खाली हो गयी हैं। कानून का हस्तक्षेप बगैर सामाजिक यथार्थ के मान्य नहीं हो सकता है।

मैं नहीं कहता कि बैंकों में पैसे जाने से अर्थव्यवस्था को लाभ नहीं होगा। वह जब होगा तब होगा, फिलहाल जिनका नुकसान हो रहा है, उनकी बात तो हो सकती है। औरतों की इस आजादी के जाने की बात करने का यह मतलब नहीं है कि काला धन का समर्थन किया जा रहा है। इस फैसले से मैं भी उत्साहित हूं, लेकिन जैसे-जैसे तमाम महिलाओं से बात हो रही है मुझे लगता है कि उनकी इस सीमित आर्थिक आजादी के जाने की बेचैनी को दर्ज करना ही चाहिए। आवाज देनी चाहिए। इस समस्या का एकमात्र पहलू यही नहीं है कि लोग जगह जगह एटीएम की कतारों में लगे हैं यह भी एक बड़ा पहलू है कि औरतें घर-घर में बेघर हो गयी हैं। हर परिवार का आपातकोष चला गया दरअसल यह आपातकोष नहीं हमारी औरतों का आजादकोष है, वो चला गया।

(एनडी टी वी से साभार) ❑

छेड़खानी : एक विश्लेषण

क्या समाज का हर व्यक्ति गुण्डा है?

❑ **अशोक मोती**

मोती पिक्चर पैलेस, गिरीडीह में कुछ युवकों ने महिलाओं के साथ छेड़खानी की थी, जिस कारण उनके विरुद्ध भारतीय दंड विधान की 290 धारा अंतर्गत एक मुकदमा दायर किया गया था। गिरीडीह अनुमंडलीय न्यायिक पदाधिकारी ने 5 युवकों को दो-दो सौ रुपये जुर्माना तथा जुर्माना नहीं देने पर एक-एक महीने सश्रम कारावास की सजा सुनायी। विद्वान दंडाधिकारी ने अपने फैसले में छेड़खानी की इस घटना की घोर निन्दा करते हुए कहा—आजकल असामाजिक तत्त्वों की हरकतों से किसी भी सभ्य परिवार की औरतों का कहीं आना-जाना असुरक्षित हो गया है और किसी की भी इज्जत आज सुरक्षित नहीं है। अतः ऐसी अपराधियों के साथ नरमी से पेश आना, उनकी हरकतों को बढ़ावा देना होगा।''

महत्त्वपूर्ण फैसला

वस्तुतः आज छेड़खानी जिस तरह आम हो गयी है, इस संदर्भ में इसके विरुद्ध दंडाधिकारी का यह फैसला बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। चूंकि छेड़खानी जिनके साथ होती है, न तो वे और न ही समाज के दूसरे लोग ही इसका वैसा विरोध करते दिखते हैं, जैसा करना चाहिए। फलस्वरूप छेड़खानी विद्यालय अथवा महाविद्यालय या विश्वविद्यालय तक ही सीमित नहीं रही है, बल्कि अब इसका क्षेत्र विभिन्न कार्यालय, बाजार, मोहल्ले, सिनेमा हाल, सड़क, ट्रेन एवं बसों से देवालय तक फैल गया है। यानी छेड़खानी के क्षेत्र और स्तर दोनों का विस्तार हुआ है।

छेड़खानी के कई रूप हैं, जैसे लड़कियों पर फब्तियां कसना, धक्के मार देना, मुंह से कुछ विचित्र आवाज निकालना, आंखें मारना और शरीर स्पर्श करने की अन्य कई हरकतें मुख्य हैं। दरअसल इस स्तर पर आज छेड़खानी हो रही है, यह समाज के लिए एक गंभीर समस्या बन गयी है। सवाल है, चंद गुण्डे छात्रों की इतनी बड़ी छात्रशक्ति को नजरअंदाज कर उनके साथ पढ़ रहीं छात्राओं के साथ छेड़खानी करने की हिम्मत कैसे करते हैं? पूरे समाज को नजरअंदाज कर चंद गुण्डे जो सरेराह चलती लड़कियों से छेड़खानी करते हैं, आखिर इसके पीछे क्या मानसिकता काम करती है? क्या विश्वविद्यालय के सभी छात्र गुण्डे हैं या समाज का हर व्यक्ति गुण्डा है? स्पष्टतः छेड़ने वालों में इस छात्र समुदाय एवं इस समाज को अच्छी तरह तौल लिया है। वे समझते हैं कि ये सारे छात्र या समाज का हर व्यक्ति उसी की तरह है या फिर इस कार्रवाई का विरोध करने की शक्ति इनमें नहीं है। दूसरा कारण यह है कि शिक्षण संस्थाओं के जो चंद गुण्डे हैं, उनका संबंध बाहरी-बाजारू गुण्डों से भी रहता है और दोनों की मिलीभगत के कारण छेड़खानी शिक्षण संस्थाओं से लेकर सड़कों और चौराहों पर भी होने लगी है।

एक समाजशास्त्रीय प्राध्यापक के अनुसार समाज के विभिन्न क्षेत्रों में जो हिंसात्मक व्यवहार बढ़ रहा है, उसका प्रभाव इस क्षेत्र पर भी पड़ता है और इसी का परिणाम है कि 90 फीसदी लड़के छेड़खानी करते हैं।

लड़के छेड़खानी क्यों करते हैं

दरअसल लड़कों के पास इसका कोई जवाब नहीं है कि वे छेड़खानी क्यों करते हैं। बल्कि उनका एक सीधा आरोप रहता है कि कम संख्या में जब लड़किंयां रहती हैं, तो उन्हें लड़के छेड़ते हैं और जब लड़कियां अधिक संख्या में रहती हैं, तो वे भी लड़कों को छेड़ने से बाज नहीं आतीं। स्पष्टतः *असंयमित एवं दमित वासना भी छेड़खानी का एक कारण है। फिर दिखावे के जिस मूल्य में विश्वविद्यालय में लोग जी रहे हैं, सामाजिक मूल्यों के स्तर से ऊंचा नहीं है। परिणामस्वरूप लड़के-लड़कियों के बीच उदारवादी प्रवृत्तियों का जो मानस बनना चाहिए, वह नहीं बन पा रहा है। वर्षों साथ पढ़ने वाले लड़कियों एवं लड़कों के बीच भी जब बातचीत नहीं हो पायी (जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली को छोड़कर) तो इसका परिणाम और हो भी क्या सकता है।*

कुछ लोगों का कहना है कि लड़कों एवं युवकों में अपने भविष्य के प्रति जो खिन्नता है, इस कारण भी वे गुण्डागर्दी करते हैं। उनका कहना है कि आधुनिकता की आड़ में लड़कियों द्वारा जिस्मों का प्रदर्शन, आज भाव, चाल-ढाल, युवकों में उत्तेजना पैदा करते हैं, इसके पीछे उनका सीधा तर्क है कि सादे-लिबास में रहने वाली छात्राओं या महिलाओं के साथ छेड़खानी नहीं के बराबर होती है।

एक छात्रा ने भी अपनी अनुभव के आधार पर इस बात की पुष्टि की। दूसरी तरह कुछ छात्राओं का आरोप है कि आज की मानसिकता ही यही है कि लड़कियों को मखौल की वस्तु बना दी गयी है। कई पुरुष प्राध्यापक भी अपने वर्गों में किसी न किसी आक्षेप का केन्द्र लड़कियों को ही बनाते हैं, जिससे लड़कों को छेड़खानी करने का प्रोत्साहन मिलता है। आम लड़के ऐसी कार्रवाई के मूक दर्शक होते हैं। वे इस झमेले में पड़ना ही नहीं चाहते। अतः कम संख्या वाले चंद लोग भी आसानी से गुण्डागर्दी कर लेते हैं। विश्वविद्यालय-पदाधिकारी एवं कानून व्यवस्था में लगे लोग भी इस तरफ से उदासीन हैं। अगर वे इस पर ध्यान दें तो इसका असर कम-से-कम सामान्य छेड़खानी करने वाले लड़कों पर तो पड़ेगा ही और जब

ये सामान्य लड़के संगठित हो जायेंगे तो गुण्डागर्दी रुकेगी ही।

गलत मान्यता

लड़कियों के साथ जो जितनी छेड़खानी करे, वह उतना बहादुर है, यह मान्यता लड़कों में छेड़खानी की प्रवृत्ति को बढ़ा रही है। इस तरह लड़के लड़कियों को छेड़कर तुष्ट हो जाते हैं। वासनात्मक भाव को उजागर करती अश्लील फिल्में व साहित्य, नंगे विज्ञापन मन की विकृति को उभारने में कम योगदान नहीं करते। मौन रहकर जो इन विकृतियों को उभार रहे हैं, क्या वे इसके लिए कम जिम्मेदार हैं। छेड़खानी के विरुद्ध प्रदर्शन का तात्पर्य यही है कि समाज का हर अच्छा व्यक्ति आखिर इसे बर्दाश्त क्यों कर रहा है?

विरोध की प्रक्रिया

देश के विभिन्न भागों में छात्र-छात्राओं, महिलाओं द्वारा बलात्कार और छेड़खानी के विरुद्ध प्रदर्शन हुए हैं। दरअसल छेड़खानी और बलात्कार में कोई तात्त्विक भिन्नता नहीं है।

छेड़खानी बलात्कार की अनिवार्य अभिव्यक्ति एवं आवश्यक प्रक्रिया है। कभी-कभी छेड़खानी ही बलात्कार एवं हत्याओं का रूप ले लेती है। उदाहरणस्वरूप पटना विश्वविद्यालय में कुछ समय पूर्व जो दो हत्याएं हुईं, उन हत्याओं में लड़कियों के साथ छेड़खानी और उसके विरोध की बात जुड़ी पायी गयी, जिनकी हत्याएं हुईं, वे छेड़खानी को रोकने वाले प्रतिपक्षी या प्रतिरोधी पक्ष के बताये जाते हैं। स्पष्टतः छेड़खानी के प्रतिरोध के कारण हुई। तो छेड़खानी के विरोध की पद्धति क्या होगी?

कुछ समय पूर्व छेड़खानी के खिलाफ पटना के एक युवा संगठन ने एक अभियान छेड़ा था—लड़कियों के साथ जिसने भी छेड़खानी की उसकी जमकर पिटाई। परंतु इस हिंसात्मक कार्रवाई से मामला और भी गंभीर हो गया। दोनों ओर से घातक अस्त्र-शस्त्र एवं बमों के प्रयोग से एक आतंक फैल

छेड़खानी : दादा धर्माधिकारी से अशोक मोती की बातचीत

लड़कियों को सताने वाले डरपोक गुंडे हैं

–दादा धर्माधिकारी

वयोवृद्ध सर्वोदयी दादा धर्माधिकारी देश के एक महान चिन्तक एवं विचारक हैं। एक सामयिक प्रश्न युवकों में लड़कियों के साथ छेड़खानी की प्रवृत्ति क्यों बढ़ रही है, और इसे समाप्त कैसे किया जाय, इसके उत्तर में दादा ने पहले थोड़ी चुप्पी साध ली, फिर हल्की डांट पिलाते हुए (आज के युवकों को) कहा– इस पर तो युवकों को ही सोचना चाहिए...परंतु...सच्चाई यह है कि तुम युवकों ने सोचना ही छोड़ दिया है। आज तुम स्कूल या कॉलेज जाते हो, माँ-बाप के लिए। समझते हो मां-बाप पर कोई उपकार करने जा रहे हो, भला तुम सोच भी क्या सकते हो? तुम्हारी संस्कृति ही बाजार, गली, नुक्कड़ और सिनेमा हाल की संस्कृति है, जो शहरी संस्कृति या सिटी कल्चर कहलाती है। इस संस्कृति में अनैतिकता स्वाभाविक है। इस अनैतिकता को बढ़ाने में सिनेमा का बहुत बड़ा हाथ है।

दूसरी तरफ शिक्षण को बाजार में लाया गया है। स्कूलें दूकाने बन गयीं। भला इसमें नैतिकता की क्या अपेक्षा की जा सकती है। मेरी तो यह पक्की राय है कि आज कोई शिक्षा में परिवर्तन भी नहीं चाहता। शिक्षा में परिवर्तन चाहते तो शिक्षण संस्थाओं के सरकारीकरण करने तथा इसे दूकान बनाने की क्या आवश्यकता थी? व्यापार तो स्वयं असामाजिक है। जहां 'कॉमर्स' रहेगा, वहां संस्कृति नहीं रहेगी। तो अनैतिकता रहेगी न? लड़कियों के साथ छेड़खानी एक अनैतिकता है। आज हर बाप को अपनी बेटी की रखवाली करनी पड़ रही है। मुझे भी करनी पड़ती है। निश्चय ही सेक्स में इनसिएटिव पुरुष का रहता है। लड़कियां तो स्वाभाविक रूप से डरती हैं। अतः जो लड़कियों को डराता है, शोषण करता है, वह गुंडा है, चाहे वह शिक्षक हो या वह समाज के किसी भी वर्ग का क्यों न हो। परंतु उसकी गुंडई कमजोर है। जो सिर्फ लड़कियों को डरा सकता है, वह मर्द गुंडा नहीं है, वह डरपोक गुंडा है।

प्रश्न : इस गुंडई को रोका कैसे जाय?

सर्वप्रथम जो लोग इसे अनैतिक एवं बुरा कार्य मानते हैं, उन्हें इसके प्रतिकार के जत्थे बनाने चाहिए। लड़कियां भी इसमें शामिल हों और इसके जो नतीजे हों, उसे भी सहने के लिए तैयार हों।

दूसरा, जो लड़के इस अनैतिक कार्य से जुड़े हों, उनके माता-पिता या अभिभावक से इसकी शिकायत की जाय तथा उनसे आग्रह किया जाय कि ऐसी संतान को पढ़ाई का खर्च नहीं दें। उनकी शादी भी नहीं करें। चूंकि जिसमें 'लस्ट' होगा, वह किसी को 'लव' या 'प्यार' नहीं कर सकता। 'फ्री सेक्स फ्री लव' नहीं है।

लेकिन इस गुंडागर्दी को कोई समाप्त करना नहीं चाहता। यही आज का चरित्र है। आखिर इसे करेगा कौन? आज हर लड़कियां रखवाली खोजती हैं। साथी नहीं खोजतीं। रखवाला अपनी रखवाली या अपनी फी तो लेगा न? जो रखवाली चाहेंगी उन्हें फी (दहेज) देनी ही होगी। यह सब तभी समाप्त होगा, जब लड़कियां निडर बनें। और यह निश्चय करें कि अब उसे रखवाले की आवश्यकता नहीं है, उसे साथी चाहिए।

श्रीवर्षा, 9 मई, 1981 से साभार

गया। जो लोग इन गुंडे तत्त्व के विरोधी है, उन्हें भी यह नहीं भाया। अंततः इस कार्रवाई को स्थगित करना पड़ा।

गुंडों की पिटाई के कारण उनके प्रति समाज में कोई सहानुभूति पैदा नहीं हुई, बल्कि इससे आतंक ही फैला और सामाजिक चेतना जगाकर जो बदलाव की शक्ति पैदा की जा सकती थी, वह भी नहीं हुआ। प्रश्न है, क्या अहिंसात्मक विरोध ही समाधान है? आखिर इस विरोध या प्रदर्शन का असर क्या होगा? स्पष्टतः इससे प्रतिकारात्मक दृष्टिकोण तेजी से फैलेंगे, जिसकी भूमिका जड़ता को तोड़ने में महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं। एक छात्रा के अनुसार ऐसे प्रदर्शन एवं विरोध का प्रभाव छात्राओं एवं महिलाओं के ऐसे वर्ग पर भी हुआ है, जिस वातावरण में भारतीय संस्कृति की व्याख्या करना ही असंभव था या जहां की सुविधाभोगी लड़कियां उन सुविधाओं का भोग करते हुए उसी सीमा में कुछ करना चाहती थीं। जहां की लड़कियां 1974 के आंदोलन में सुगबुगाती भी नहीं थी, उन्होंने भी छेड़खानी के विरुद्ध योगदान शुरू किया है। इससे लड़कियों की स्पष्ट एवं जीवित भूमिका तो शुरू होती ही है, साथ ही छेड़खानी एवं बलात्कार करने वालों का मनोबल भी टूटता है। पर कई ने आश्चर्य एवं व्यंग्य-भरे प्रश्न किये हैं—क्या यह शुद्धिवादी आंदोलन सफल हो सकता है? तो क्या जिस स्तर पर आज छेड़खानी चल रही है, उसे कम भी नहीं किया जा सकता? क्या लड़के-लड़कियों के बीच सदभावना का वातावरण तैयार नहीं किया जा सकता? परंतु इसके लिए आवश्यक है कि लड़के-लड़के के बीच दोस्ती के जो आधार है, वे ही आधार लड़के एवं लड़कियों के बीच भी बने? लड़के-लड़कियां साथ रहते हैं, लेकिन साथ जीते नहीं। जब तक दोनों में परिचारिकता एवं सामाजिकता का भाव नहीं तब तक छेड़खानी नहीं रुकेगी।

श्रीवर्षा, 9 मई, 1981 से साभार ❑

गांधी और संघ

नौ दशकों का विरोधाभासी सफर

❑ रविन्द्र रुक्मिणी पंढरीनाथ

मोहनदास करमचंद गांधी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का रिश्ता एक अजीबोगरीब पहेली है, जिसके बारे में न जाने कितने सारे भ्रम पाले या उगाये जाते रहे हैं। गांधीजी की हत्या में संघ की भूमिका और राहुल गांधी के भाषण को लेकर संघ ने न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। भिवंडी सेशन्स कोर्ट से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक उसकी प्रतिध्वनि गूंज उठी। संघ ने अपने समर्थन में गांधीजी के एक प्रपौत्र श्रीकृष्ण कुलकर्णी को अखाड़े में उतारा, तो उसके विरोधियों की हिमायत गांधीजी के एक अन्य प्रपौत्र तुषार गांधी ने की। उसके बाद संघ के प्रमुख विचारक म. गो. वैद्य ने कहा कि गांधीजी के मृत्यु के बाद संघ ने 13 दिनों तक शोक मनाया था। उनके अनुसार गांधी हत्या से हमारा कोई सरोकार नहीं है। हम गांधीजी को प्रातःस्मरणीय मानते हैं। गौरतलब है संघ को बार-बार ऐसा कहने की जरूरत क्यों महसूस होती है?

गांधी हत्या के लिए संघ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जिम्मेदार था या नहीं, परंतु गांधीजी की हत्या के बाद संघ के लोगों ने खुशियां मनायी थी, इस बात की पुष्टि खुद सरदार पटेल और विनोबा भावे ने की है। गांधीजी के प्रति सख्त नफरत की अंतिम कड़ीं उनकी हत्या थी। संघ इस प्रक्रिया की अंतिम कड़ी से अपने आपको अलग साबित करना चाहता है। परंतु नाथूराम के फलसफे से उसका अपना हिन्दुत्ववाद किस तरह भिन्न है? सवाल यह है कि संघ के सहप्रवासी संगठन ने गांधीजी की हत्या क्यों की? हिन्दुत्ववादियों द्वारा उछाले गये 55 करोड़ रुपये का सवाल, देश के विभाजन में गांधीजी की भूमिका वगैरह दावे नितांत खोखले हैं। यह कई बार साबित भी हो चुका है।

अपने समूचे इतिहास में हिन्दुत्व के पक्षधरों ने सिर्फ एक ही इंसान (महात्मा गांधी) पर गोली चलायी है। अंग्रेज, देश के अन्य नेता, यहां तक कि पाकिस्तान के निर्माता बैरिस्टर जिन्ना को छोड़ सिर्फ गांधीजी को ही उन्होंने अपनी गोली का निशाना क्यों बनाया? गांधीजी सचमुच कितने शक्तिशाली थे, यह बात गांधीभक्त कभी समझ नहीं सके। प्रगतिशील तबकों ने इस बात को समझने की कोशिश तक नहीं की, लेकिन गांधीजी के दुश्मनों ने उनकी ताकत को अच्छी तरह से आंका था। गांधी नामक बूढ़े इंसान में आखिर क्या ताकत थी जिससे वे इतने भयभीत थे?

भारत में गत दो शताब्दियों में जितनी भी विचारधाराएं निर्माण हुई, उनमें भारतीय संस्कृति और परम्परा का अभिमान रखने वाली सिर्फ दो ही धाराएं हैं—हिन्दुत्व और गांधी विचार। धाराओं ने भारतीय परम्परा को व उसकी मिश्रता को समझे बगैर इसे सतत और जोर शोर से नकारा। (राम-कृष्ण-शिव के मर्म को समझने की लोहिया की बात उनके अपने शिष्यों ने ही अनसुनी कर दी।) दूसरी ओर हिन्दुत्व ने इस परम्परा का, उसमें निहित विषमता, शोषण और अंधविश्वास के साथ खुला समर्थन किया। (याद कीजिए कितने सारे शंकराचार्यों द्वारा किया गया अस्पृश्यता का खुला समर्थन, हिन्दू कोड बिल का किया गया विरोध और सती के सवाल पर मचा बवंडर!) गांधी इन दोनों धाराओं से अलग निकले। उन्होंने परम्परा को जरूर स्वीकारा, लेकिन मूल्य विवेक के आधार पर। बिना किसी बगावत का परचम फहराए उन्होंने परम्परा और सभ्यता के त्याज्य हिस्से को नकार कर, सिर्फ उसके

उचित तथा चिरन्तन भाग को ग्राह्य माना। उन्होंने धर्म और ईश्वर की संकल्पनाओं को स्वीकारा, लेकिन वह भी अजूबे ढंग से। उनके लिए धर्म का अर्थ था नैतिक आचरण। यह सद्‌गुण और उन्नत मूल्यों का परमाविष्कार था। उनके रामराज्य से मुस्लिम आतंकित नहीं हुए, क्योंकि उनका राम रहीम से अभिन्न था। उन्होंने अंधविश्वास शब्द का प्रयोग शायद ही किया हो। परंतु कलकत्ता जाकर (पशुबलि दिये जानेवाले) 'काली मंदिर में मैं नहीं जाऊंगा', यह कहने की हिम्मत उनमें थी। उन्होंने किसी संत महंत या महाराज को पनाह नहीं दी और न ही किसी कर्मकांड को अपने निजी या सार्वजनिक जीवन में घुसने का मौका दिया।

गांधीजी ने समूचे भारतीयों का संगठन करने की कोशिश की परंतु संघ केवल हिन्दुओं का संगठन खड़ा करना चाहता था। इस प्रक्रिया के तहत उसने कभी भी धर्म में निहित गलत तत्त्वों से संघर्ष नहीं किया फिर सवाल चाहे जाति व्यवस्था का हो, नारी स्वतंत्रता का या अंधविश्वास का। इसीलिए समाज उस बूढ़े के पीछे चलता रहा, जो अस्पृश्यता निवारण जैसे संवेदनशील सवाल पर लोगों के मन को झकझोरता रहा, जो स्वतंत्रता संग्राम के नाम पर लाखों औरतों को परदे से उठाकर सीधा सड़कों पर जुलूसों में ले जाता रहा। जो पता नहीं कितने सारे बेचैन करने वाले सवाल उठाते रहा।

गांधीजी के अन्य विरोधकों ने, जैसे कि अम्बेडकरवादी, कम्युनिस्ट, समाजवादी ने उनका कई बार खुलकर और डटकर विरोध किया। गांधी को खत्म कर हम उनके विचारों को फैलने से रोक सकते हैं, ऐसा मानना हिन्दुत्ववादियों की बड़ी भूल साबित हुई। विभाजन के जख्म जब ताजे थे, तब गांधीजी की शांति और प्रेम की हिदायत कई लोगों को पसंद नहीं आयी थी। लेकिन फिर भी गांधी इस मुल्क के पिता थे और भारतीय परम्परा में पितृहत्या का बिलकुल स्थान नहीं है और इसलिए उन्हें क्षमा नहीं मिल सकती। हिन्दू महासभा संगठन के नाथूराम गोडसे ने गांधीजी की हत्या की, फिर भी रा. स्व. संघ का उसकी विचारधारा से जो करीबी रिश्ता है, उसे मद्देनजर हिन्दुत्व गांधीजी के खून के चंद धब्बे संघ के गिरेबान पर भी पड़े हैं। संघ यह भलीभांति जानता है कि जब तक ये दाग धुल नहीं जाते, उसे देश के हृदय में जगह नहीं मिल सकती।

संघ के पुख्ता सहयोग के आधार पर सन् 2014 का आम चुनाव मोदीजी ने जीत लिया और उसके बाद गांधी-संघ रिश्ते में एक नया अध्याय जुड़ गया। *प्रधानमंत्री विदेश में जाकर जब भी भारतीय परम्परा और हिन्दू धर्म के बारे में बोलते हैं, तब वे अक्सर गांधीजी की दुहाई देते हैं। गांधीजी का व्यक्तित्व और विचार इनके बारे में वे बार-बार आदर प्रदर्शित करते हैं, जबकि संघ विचार से जुड़े विचारक, जैसे कि सावरकर, गोवलकर, दीनदयाल उपाध्याय का जिक्र तक नहीं करते। पिछले दशहरे पर सरसंघचालक मोहन भागवत जी ने स्वयं सेवकों को संबोधित करते हुए जो भी कहा, वह 90 प्रतिशत गांधी विचार से प्रेरित था।* हालांकि सोशल मीडिया पर गांधीजी पर छिड़ी बहस में आज भी हिन्दुत्व प्रेमी गाली गलौच पर उतर आते हैं। इस सबका क्या अर्थ लगाया जाए?

यदि गांधी भरोसेमंद इंसान नहीं हैं तो भी 'स्वच्छ भारत मिशन' या देश परदेश में भाषण करते समय वह संघ-भाजपा के नेताओं के काम जरूर आता है। लेकिन वक्त-बेवक्त उनके लिए आफत भी खड़ी कर देता है। जिस किसी को बुनियादी काम करना हो, वह गांधी विचार और गांधी विचारकों द्वारा किये गये रचनात्मक कार्य को टाल कर आगे बढ़ ही नहीं सकता। गत 25-30 वर्षों में संघ परिवार की कई सारी संस्थाएं गांधी विचार से प्रभावित रचनात्मक कार्य में जुड़ गयी हैं। उदाहरणार्थ भारतीय किसान संघ के काम का आधार रासायनिक खेती ओर जी एम बीज का विरोध और प्राकृतिक खेती की हिमायत रहा है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही हो, यह भारतीय भाषा सुरक्षा मंच की बुनियादी मांग थी। परंतु केन्द्र और राज्य में भाजपा का शासन आने के बावजूद कांग्रेस की पुरानी नीतियां न केवल चलती रही, बल्कि उन्हें ओर मजबूत बनाया गया। सख्त अनुशासन में पले ये संगठन कुछ समय तो चुप रहे, लेकिन आखिर वे भी बगावत कर बैठे। 30 जनवरी 1948 को मोहनदास करमचंद गांधी नामक व्यक्ति की हत्या हुई और उसकी देह नष्ट हुई। लेकिन उसी के साथ वह 'महात्मा' बन कर या 'भूत' बनकर जैसा भी आप सोचें इस देश के कंधे पर सवार हो गया। *(सप्रेस)*

ठाणे जेल में शुरू है कैदियों द्वारा 'सत्य के प्रयोग'

ठाणे जिले के मध्यवर्ती जेल में सजा काट रहे प्रशांत पवार और राजेश सिंह ने मुम्बई सर्वोदय मंडल ने गांधी शांति परीक्षा के दौरान दी हुई महात्मा गांधी की पुस्तक 'सत्य के प्रयोग' को पढ़कर धूम्रपान की आदत छोड़ दी। दोनों ही जेल में धूम्रपान की आदत को छोड़ने के बाद अन्य कैदियों को प्रेरित कर रहे हैं, जेल के बैरक के बाहर 'नो-स्मोकिंग जोन' के पोस्टर भी लगाये हैं।

गांधीजी के विचारों से प्रेरित होकर प्रशांत पवार एम. ए. की पढ़ाई के लिए तैयार हो रहा है। जेल में पढ़कर वह वकील बनने के लिए दृढ़ संकल्प ले चुका है।

प्रशांत पवार ठाणे जिला का रहने वाला है। ढाई वर्ष पहले शुरू हुआ प्रशांत का प्रेमप्रसंग उसकी प्रेयसी की हत्या से समाप्त हुआ। आज भी प्रशांत को उसका पश्चात्ताप होता है। वह 2007 से ठाणे जेल में सजा काट रहा है। जेल में वह हत्यारे कैदियों के साथ रहता है। इसी दौरान उसे महात्मा गांधी की पुस्तक 'सत्य के प्रयोग' पढ़े के मिली।

जेल के अधीक्षक नीतीन वायचलजी का कहना है कि 'गांधीजी के विचारों से कैदियों में सुधार आ रहा है। **–टीके सोमैय्या**

राजनीति बनाम संविधान

दिल्ली अभी भी दूर है

❑ एल. एस. हरदेनिया

दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक इंडियन एक्सप्रेस के दिनांक 27 जून के संस्करण में दो समाचार प्रकशित हुए थे। इनमें से एक समाचार का शीर्षक था ''आप पार्टी के 51 एम.एल.ए. के साथ दिल्ली के उपमुख्यमंत्री सिसौदिया का प्रधानमंत्री दूसरा निवास की तरफ मार्च, रास्ते में गिरफ्तारी'' और ''भाजपा का अपने कार्यकर्ताओं से आवाहन, चौकन्ने रहो और दिल्ली के मुख्यमंत्री केजरीवाल और सरकार से भिड़ने के लिए तैयार रहो।'' इन दोनों समाचारों को पढने से किसी भी नागरिक के चेहरे पर चिन्ता की लकीरें उभर आना स्वाभाविक है। ये दोनों समाचार हमारे देश के संघात्मक संवैधानिक ढाँचे को कमजोर करने के प्रयास हैं।

वैसे तो परम्पराओं के अनुसार संवैधानिक पद पर पदस्थ व्यक्ति को किसी भी प्रकार की आंदोलनात्मक गतिविधियों में भाग नहीं लेना चाहिए। यदि किन्हीं परिस्थितियों के चलते उसे ऐसा करने पर मजबूर होना पड़ता है तो पद त्यागकर यह करना चाहिए। इस समय की राजधानी दिल्ली में जो स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं उनके परिणाम बहुत भयंकर हो सकते हैं। सारी दुनिया केन्द्र और दिल्ली की सरकार के बीच जारी संघर्ष पर हँस रही है। दुनिया के किसी लोकतंत्रात्मक देश में इस तरह की परिस्थिति पैदा नहीं होनी चाहिए।

हमारे देश का संवैधानिक ढाँचा संघीय है। संविधान ने संघीय ढाँचे के संचालन के लिए केन्द्र और राज्यों के अधिकारों का विभाजन किया है। संविधान के अनुसार अनेक विषयों के अधिकार केन्द्र को दिये गये, इसी तरह अनेक विषय राज्यों को दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त एक समवर्ती सूची है जिनके अधिकार केन्द्र और राज्यों दोनों को है। राज्यों का शासन संविधान की मर्जी से चल रहा है, इस पर नजर रखने के लिए राज्यपाल के पद का निर्माण किया गया है।

संघीय ढाँचा क्या है? उस ढाँचे का संचालन कैसे होगा? इस विषय पर डॉ. अम्बेडकर ने विस्तृत प्रकाश डाला है। संविधान को स्वीकृति के लिए पेश करने के पूर्व 25 नवंबर, 1949 को संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर ने एक लंबा भाषण दिया था। अन्य बातों के अतिरिक्त उन्होंने अपने भाषण में केन्द्र और राज्य के संबंधों की विस्तृत व्याख्या की थी। संविधान सभा के अनेक सदस्यों ने इस बात पर कड़ी आपत्ति की थी संविधान में केन्द्र को बहुत अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। केन्द्र को इतनी शक्तियाँ दी गयी हैं कि उनके चलते राज्यों की स्थिति लगभग नगरपालिका जैसी हो गयी है। इस बात को बेबुनियाद बताते हुए *अम्बेडकर ने कहा था कि एक मजबूत केन्द्र हमारे देश की ऐतिहासिक आवश्यकता है। अतीत में जब-जब केन्द्र कमजोर हुआ है देश ने अपनी आजादी खोई है। इस संदर्भ में उन्होंने इतिहास से अनेक उदाहरण दिये थे। डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया था कि दो क्षेत्रों में हमने केन्द्र और राज्यों को पूरी तरह स्वायत्तता दी है। ये दो क्षेत्र हैं कार्यपालिका और विधायिका। इस प्रावधान के अंतर्गत केन्द्र सरकार राज्यों के प्रशासनिक मामलों में कतई हस्तक्षेप नहीं कर सकती और उसी तरह विधायिका के क्षेत्र में भी संसद राज्यों के विधानमंडलों की कार्यप्रणाली और गतिविधियों के संचालन में हस्तक्षेप नहीं कर सकती।*

राज्यों की प्रशासनिक गतिविधियों का जहाँ तक संबंध है राज्यों के मुख्यमंत्रियों को पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। उसी तरह राज्यों में विधानसभा के अध्यक्ष अपने कार्यक्षेत्र में उतने ही अधिकार सम्पन्न है जितने लोकसभा के अध्यक्ष। लोकसभा का अध्यक्ष या राज्यसभा का सभापति राज्यों की विधानसभाओं और उनके अध्यक्षों को किसी प्रकार के निर्देश नहीं दे सकते। डॉ. अम्बेडकर ने बार-बार जोर देकर कहा कि इन दोनों क्षेत्रों में केन्द्र और राज्यों की स्थिति समान है। संविधान ने जो यह लक्ष्मण रेखा खींची उसे कोई नहीं मिटा सकता। डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा कि मेरे इस तर्क के बाद यह आरोप बेबुनियाद साबित हो जाता है कि संविधान में राज्यों की स्थिति नगरपालिका जैसी कर दी गयी है।

पिछले वर्षों में जब भी केन्द्र और राज्यों के बीच टकराव की स्थिति निर्मित हुई है तो उसका मुख्य कारण डॉ. अम्बेडकर द्वारा खींची गयी लक्ष्मण रेखा को लांघना है। अभी कुछ दिनों पूर्व केन्द्र और राज्यों के बीच टकराहट की जो स्थितियाँ निर्मित हुई हैं उनका यदि विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि कहीं न कहीं संविधान और बाद में निर्मित परम्पराओं के विपरीत काम हुआ है।

इस संदर्भ में उत्तराखंड का उदाहरण लें। दलबदल के कारण उत्तराखंड की कांग्रेस सरकार कथित रूप से अल्पमत में आ गयी। दलबदलुओं को भाजपा का समर्थन मिला। उनकी तरफ से यह दावा किया गया कि बहुमत उनके साथ है। वहीं दूसरी ओर कांग्रेसी मुख्यमंत्री यह दावा कर रहे थे कि बहुमत उनके साथ है। इस पर वहाँ के राज्यपाल ने यह तय किया कि इस बात का फैसला कि बहुमत किसके साथ है विधानसभा के भीतर किया जाए।

राज्यपाल ने इस उद्देश्य से विधानसभा की बैठक की तिथि तय कर दी। परन्तु उस तिथि के ठीक एक दिन पहले केन्द्र सरकार ने उत्तराखंड में राष्ट्रपति शासन लागू कर

दिया। राज्यपाल ने अपना निर्णय सरकारिया आयोग द्वारा की गयी सिफारिश के अनुसार किया था। न्यायमूर्ति सरकारिया की अध्यक्षता में केन्द्र और राज्यों के संबंध में पायी जाने वाली विसंगतियों को दूर करने के उपायों के संबंध में सुझाव देने के लिए गठित किया गया था। काफी मंथन के बाद सरकारिया आयोग ने यह सिफारिश की थी कि किसी राज्य सरकार के पास बहुमत है कि नहीं, इस बात का निर्णय सदन के भीतर ही हो। केन्द्र के द्वारा इस सिफारिश के विपरीत कार्य किया गया, जिसकी न्यायपालिका ने न सिर्फ आलोचना की वरन् केन्द्र सरकार को आदेश दिया कि वह उत्तराखंड से राष्ट्रपति शासन हटाए और विधानसभा के भीतर मतदान कराकर बहुमत-अल्पमत को फैसला होने दे। स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार न्यायपालिका ने इतना जोरदार हस्तक्षेप किया। इस तरह उत्तराखंड के मामले में घटे घटनाक्रम से संघीय व्यवस्था की बुनियाद कमजोर हुई।

दिल्ली की स्थिति तो पूरी तरह से उलझनपूर्ण है। संविधान के लागू होने के अनेक वर्षों तक दिल्ली में उपराज्यपाल का शासन था। वह सीधे गृहमंत्रालय के नियंत्रण में काम करते थे। उस दौरान दिल्ली में एक कार्यपालिका परिषद होती थी जो राज्यपाल को परामर्श देती थी। कुछ समय बाद दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा देने की माँग उठी। बाद में यह माँग स्वीकार कर ली गयी परन्तु दिल्ली राज्य को वे सब अधिकार नहीं दिये गये जो देश के अन्य राज्यों को प्राप्त थे। जैसे पुलिस पर दिल्ली की राज्य सरकार का नियंत्रण नहीं है। प्रशासन के अनेक क्षेत्रों में राज्यपाल को मुख्यमंत्री से ज्यादा अधिकार प्राप्त हैं। स्थिति इतनी खराब है कि मुख्यमंत्रियों को विभिन्न विभागों के अधिकारियों की नियुक्ति करने तक का अधिकार नहीं है। इसीलिए जब तक दिल्ली और केन्द्र में एक ही दल की सरकारें रहती हैं तभी टकराहट की स्थिति नहीं बनती है।

इस बार दिल्ली का शासन हाल में गठित एक दल के हाथों में आया है। इस दल का जन्म आंदोलन की कोख से हुआ है। इसने वहाँ की विधानसभा में अभूतपूर्व बहुमत हासिल किया वह भी दोनों राष्ट्रीय पार्टियों को करारी हार देकर। शायद ही किसी राज्य में विरोधी दल की स्थिति इतनी खस्ता बनी हो जो दिल्ली में है। इतनी अभूतपूर्वक सफलता से किसी का भी आपे से बाहर होना स्वाभाविक है। जब से वहाँ आप पार्टी की सरकार ने सत्ता सँभाली है केन्द्र व राज्य के बीच में टकराहट की अनेक घटनाएँ हुई हैं। जो कुछ हो रहा है उससे हमारा संघीय ढाँचा कमजोर हो रहा है। दिल्ली राज्य की सबसे बड़ी समस्या राज्य सरकार के ढाँचे की है। दिल्ली भारत जैसे विशाल देश की राजधानी है। राजधानी के भीतर एक समानांतर सत्ता केन्द्र का निर्माण भी गंभीर भूल थी। दुनिया के देशों की कम ही राजधानियों में इस तरह की व्यवस्था है।

देश की राजधानी में हास्यास्पद स्थितियाँ निर्मित होने से हमारे देश की प्रतिष्ठा प्रभावित होती है। देश के समस्त दलों को चाहिए कि वे पारस्परिक विचार कर दिल्ली में व्याप्त अराजक स्थितियों को समाप्त करने का प्रयास करें। चूँकि अब दिल्ली के राज्य के दर्जे को समाप्त करना लगभग असम्भव है इस दशा में दिल्ली की सरकार को वे सब अधिकार दे देने चाहिए जो अन्य राज्यों की सरकार को प्राप्त हैं। इसी में देश का हित और स्थायित्व है। *(सप्रेस)*

लघु-कथा

नदियां और समुद्र

❑ रामधारी सिंह 'दिनकर'

एक ऋषि थे जिसका शिष्य तीर्थाटन करके बहुत दिनों के बाद वापस आया।

सन्ध्या समय हवन-कर्म से निवृत्त होकर जब गुरु और शिष्य, जरा आराम से धूनी के आर-पार बैठे तब गुरु ने पूछा, 'बेटा इस लम्बी यात्रा में तुमने सबसे बड़ी कौन बात देखी?' शिष्य ने कुछ सोचकर कहा, सबसे बड़ी बात तो मुझे यह लगी कि देश की सारी नदियां बेतहाशा समुद्र की ओर भागी जा रही हैं।'

गुरु बोले, 'अरे इसमें कौन-सी बड़ी बात है?'

शिष्य ने निवेदन किया, 'बड़ी बात तो है महाराज। अब यही देखिये कि जितनी नदियां हैं, वे सब-की-सब श्रद्धेय हैं। उनका रूप मनोहर और जल सुस्वादु है और उनके किनारों पर इतने फूल खिलते हैं, इतने पक्षी चहचहाते हैं कि आदमी का जी वहां से हटने को नहीं चाहता। मगर नदियां हैं कि एक क्षण कहीं रुकने का नाम नहीं लेती, वे भागी जा रही हैं। और किसकी तरफ को महाराज? उस समुद्र की तरफ को, जिसका रंग नीला और सारा शरीर लवण से तिक्त है।' ऋषि ने कहा, 'बेटा समुद्र नर और नदियां नारी हैं, नारियों का स्वभाव है कि वे अपने प्रेमी का चुनाव, रूप नहीं, गुण देखकर करती हैं। समुद्र नीला और खारा भले ही हो, मगर कुछ गंभीर है और बड़ा मर्यादावान भी। इसलिए वह न तो कभी घटता है और न इसमें बाढ़ ही आती है। ऐसे सुगम्य मर्यादा-पुरुषोत्तम का आकर्षण भला कौन नारी रोक सकती है।' ❑

दृष्टि और सृष्टि

गंगा-उद्गम में हरे पेड़ों पर कुल्हाड़ी चलाने की तैयारी

❑ सुरेश भाई

'नमामि गंगे' के अंतर्गत गंगा की स्वच्छता और पारिस्थितिकी तंत्र के सुधार के लिए सरकार ने 30 हजार हेक्टेयर भूमि पर वनों के रोपण का लक्ष्य रखा है। दूसरी ओर गौर करेंगे तो गंगा के उद्गम स्थल में गंगोत्री से हर्षिल के बीच हजारों देवदार के हरे पेड़ों की हजामत करने के लिए चिन्हित किया हैं।

यह क्षेत्र अभी तक पिछले दिनों लगी भीषण आग से पूरी तरह भी नहीं उभर पाया है। धीरे-धीरे यहां की वनस्पतियां हरीतिमा ओढ़कर सांस लेने लगी हैं। इसके बावजूद भी उनके ऊपर आरी-कुल्हाड़ी का वार करने की तैयारी चल रही है। इसी में फैले 2300 वर्ग किमी क्षेत्र में गंगोत्री नेशनल पार्क भी है। 2008 में गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित करने के बाद इसे बढ़ाकर 4 हजार वर्ग किमी तक इको सेंसटिव जोन के रूप में भी सरकार ने घोषित किया है। जिस इको सेंसटिव क्षेत्र में हरित क्षेत्र और कृषि क्षेत्र को बढ़ाने पर सरकार जोर दे रही है, वहां किसके इशारे पर वनों की शामत आयी है। गंगा को निर्मल और अविरल रखने में वनों की महत्त्वपूर्ण भागीदारी है। इसके बाद भी पेड़ों के कटान पर रोक नहीं लग पा रही है। इस क्षेत्र की शेष बची हुई जैवविविधता के बीच में एक पेड़ का कटान करना भी अति नुकसानदेह होता है। पेड़ों के कटान और लुढ़कान से आग और भूस्खलन से प्रभावित यहां की नम धरती में भूमि कटाव की समस्या पैदा होती है। भूगर्भविदों ने बाढ़ और भूस्खलन के लिए अति संवेदनशील जोन 4 और 5 के अंतर्गत भी यह इलाका रेखांकित किया है। वैसे भी सन् 1977 से 2016 के बीच इस क्षेत्र में 30 बार से अधिक बाढ़ और हजारों भूकम्प के झटके आ चुके हैं। सन् 1991 के भूकम्प का केन्द्र भी इसी क्षेत्र में था। यहां हर साल जंगलों में आग लगने से असंख्य पेड़ गिरते रहते हैं, जो बाढ़ के समय भागीरथी नदी में बहकर आते हैं। इन गिरे पड़े सूखे पेड़ों से अपेक्षित लाभ न मिलने के कारण ही हरे पेड़ों का कटान किया जाता है।

गंगा के उद्गम की दुर्लभ वन प्रजातियां जैसे राई, कैल, मुरेंडा, देवदार, खर्सू, मौरू नैर, थुनेर, दालचीनी, बॉज, बुरॉस आदि शंकुधारी एवं चौड़ी पत्ती के पेड़ों के दर्शन पर्यटकों को भी आकर्षित करते हैं। ये अधिकतर प्रजातियां उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इनके बीच में उगने वाली जड़ी-बूटियों और यहां से बहकर आ रही जलधाराएं ही गंगा जल की गुणवत्तापूर्ण निर्मलता बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। यह ध्यान देने की जरूरत है कि यहां की वन प्रजातियां एक तरह से रेन फारेस्ट (वर्षा वाली प्रजाति) के नाम से भी जानी जाती हैं। जहां हर समय बारिश की संभावनाएं बनी रहती हैं। यदि यहां ग्लेशियर भी टूटकर आते हैं तो ये प्रजातियां उसके दुष्परिणाम से भी बचाती हैं। ग्लेशियरों का तापमान बनाये रखने में भी इनकी सेवा सर्वोपरि हैं। यहां गंगोत्री के आसपास गौमुख समेत सैकड़ों ग्लेशियर हैं जहां हर रोज भरपूर हरियाली की आवश्यकता है। यहां जिन देवदार के हरे पेड़ों को कटान के लिए चिन्हित किया गया है, उनकी उम्र न तो छंटाई योग्य हैं, और न ही उनके कोई हिस्से सूखे हैं।

गौरतलब है कि बाढ़, भूस्खलन, भूकम्प के लिए संवेदनशील होने पर भी गंगा के उद्गम में देहरादून और हरिद्वार के मानकों के बराबर ही मार्ग को चौड़ा करने की सरकार की योजना है। यह गंगोत्री नेशनल हाइवे के नाम पर ही है। ऐसी स्थिति में ग्लेशियरों के मलवों के ऊपर खड़े पहाड़ों को थामने वाली वन सम्पदा के विनाश की लीला के कारण बहती गंगा में विकास के नाम पर स्वाह करने जैसी तैयारी भविष्य के लिए प्रतीत होती है। जिसके लिए भारी असंख्य वन प्रजातियों के विदोहन की योजना है। सन् 1994-98 के बीच भी इस क्षेत्र में हजारों देवदार के हरे पेड़ों को काटा गया था। उस समय हर्षिल, मुखवा गांव की महिलाओं ने पेड़ों पर रक्षासूत्र बांधकर विरोध किया था। रक्षासूत्र आंदोलन की पहल पर केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने एक जांच टीम का गठन भी किया था, जिसके उपरांत दर्जनों वनकर्मी दोषी पाये गये थे।

वैसे किसी भी वन रेंज में वनों के विदोहन से पहले स्थानीय गांव वालों को भी पूछा जाना चाहिए, लेकिन ऐसा तो वन विभाग कहीं भी नहीं करता है। वे इसकी खानापूर्ति के लिए स्थानीय जन प्रतिनिधियों से सूखे पेड़ों के नाम पर मुहर लगा देते हैं। इस क्षेत्र में शायद इसकी जरूरत भी न पड़ी हों क्योंकि विकास का एजेंडा हो सकता है, लेकिन इससे पहले यह सोचना जरूरी है कि संवेदनशील धरती के साथ कितना छेड़छाड़ किया जा सकता है। आवश्यकता से अधिक हुआ तो बाद में आपदा तंत्र को एलर्ट करने का कोई अर्थ नहीं होता है। अच्छा हो कि किसी संभावित दैवीय आपदा वाले क्षेत्रों में आपदा प्रबंधन लोगों के हाथ में देकर वहां के प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन को रोकने में भागीदारी बढ़ायी जाये।

गंगोत्री जैसे उच्च हिमालयी क्षेत्र में वन्य जीवों की दुर्लभ प्रजातियां हैं। वनों के कटान के कारण वन्यजीवों का शिकार बहुत आसान हो जाता है। यहां के लोग यात्रा सीजन के 6 माह तक ही गांव में रहते हैं। शेष सर्दी के महीनों में उत्तरकाशी, डूण्डा, मातली आदि स्थानों पर निवास करते हैं। ऐसी विषम

परिस्थिति वाले क्षेत्रों में वनों का बेहिचक अंधाधुंध कटान को रोकना भी बहुत चुनौतीपूर्ण है। उत्तराखंड में वन बचाने के लिए चिपको और रक्षासूत्र आंदोलनों की रिपोर्टों पर गौर करें तो वन विदोहन वाले क्षेत्रों में शराब की थैलियां और कच्ची शराब बनाने और बेचने के धंधे भी जुड़ जाते हैं। वन माफियाओं को शराब और वन दोनों से लाभ मिलता है। इसके साथ ही जड़ी बूटियों की तश्करी और वन्य जीवों के शरीर के अंगों का अवैध व्यापार भी होता है।

आमतौर पर पहाड़ की महिलाओं का वनों से दैनिक रिश्ता है। वे जितने समय घर में व्यतीत करती हैं, लगभग उतना ही समय वनों से घास, लकड़ी, पानी लाती हैं। वनों के बीच में चारा घास और चारापत्ती वाले वृक्ष दोनों से महिलाएं रोज अपने मवेशियों को पालती हैं। वनों का निर्मम दोहन चाहे उच्च हो या मध्य हिमालय में दोनों स्थानों पर महिलाओं के काश्त को ध्यान में नहीं रखा जाता है। वन विदोहन में लगे मजदूर और ठेकेदार नशें में जंगल की अस्मत को लूटने में माहिर रहते हैं। कभी कोई महिला संगठन अपने जंगल बचाने की बात करें भी तो, वह भी विकास विरोधी हो जायेंगी। देश में यह स्थिति केवल गंगा के उद्‌गम में ही नहीं बल्कि हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, अरुणाचल, नागालैंड, असम, मिजोरम, मणिपुर आदि राज्यों के वनों की हजामत सड़कों के चौड़ीकरण, सूखे पेड़ों के नाम पर पर्यटन, जलविद्युत आदि के लिए किया जा रहा है। इससे राज्य को करोड़ों की आमदनी भी है। यह ध्यान देना जरूरी है कि क्या हरे पेड़ काटकर वृक्षारोपण करना जरूरी है या इसे बचाकर नये वृक्षविहीन स्थानों पर बजट का इस्तेमाल पेड़ लगाने के लिए होना चाहिए। हिमालयी क्षेत्रों की वन विविधता को ध्यान में रखकर सड़कों की चौड़ाई, छोट पनबिजली, इको टूरिज्म, वन्य जीवों की सुरक्षा वनाधिकार 2006 जैसे विषयों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। ❑

गतिविधियां एवं समाचार

जेपी स्मृति दिवस पर किसान विषयक परिसंवाद आयोजित

किसानों की लड़ाई लड़ने के लिए शहरों में रह रहे किसानों के बच्चों को आगे आना होगा, यह आह्वान छात्रयुवा संघर्ष वाहनी के पूर्व राष्ट्रीय संयोजक अमर हबीब ने जेपी स्मृति दिवस पर आयोजित व्याख्यान में किया। 8 अक्टूबर 2016 को नागपुर के कस्तूरबा भवन में किसान आत्महत्याओं का सच और जनआंदोलनों के लिए आह्वान विषय पर जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी और महाराष्ट्र गांधी स्मारक निधि के द्वारा संयुक्त रूप से परिसंवाद का आयोजन किया गया था।

इस आयोजन की अध्यक्षता अखिल भारतीय महाराष्ट्र साहित्य महामंडल के अध्यक्ष श्रीपाद भालचंद्र जोशी ने की। संचालन सुरेखा देवघरे ने किया। जसवा के ज्ञानेन्द्र कुमार ने भी अपने विचार व्यक्त किये। महाराष्ट्र गांधी स्मारक निधि के सुनील पाटिल और जसवा के प्रकाश तोवर ने आयोजन में केन्द्रीय भूमिका निभायी।

अमर हबीब ने कहा कि किसानों की आत्महत्या का कारण भूमंडलीकरण और गरीबी को माना जाता है पर यह सच नहीं है। भूमंडलीकरण के कारण आत्महत्याएं होतीं तो ये हर राज्य में होतीं। गरीबी कारण नहीं हो सकती क्योंकि गरीबी घटी है, अब पहले से ज्यादा सम्पन्नता है। हालांकि यह सम्पन्नता सीधे खेती से नहीं आयी। यह किसानों के बाहर गये संतानों की आमदनी से हासिल हुई है।

किसानों की आत्महत्या का असल कारण किसानों को सताने वाले कानून हैं। भूमि हदबंदी कानून, भू-अर्जन कानून और आवश्यक वस्तु कानून—इन तीन कानूनों के कारण किसानों को सर्वाधिक नुकसान हो रहा है। ये कृषि प्रतिभा के साथ-साथ निवेश को रोकने का काम करते हैं। सीलिंग या हदबन्दी हटेगी तभी कृषि क्षेत्र में भी कुछ नारायण मूर्ति उभरेंगे।

किसानों की आमदनी बढ़ाने, समृद्ध बनाने के लिए जोड़ धंधों (सहायक उद्यमों) को अपनाने की सलाह दी जाती है। सच्चाई तो यह है कि कृषि को ही जोड़ धंधा बना दिया गया है। व्यापारी, राजनेता, अफसर कर्मचारी अब अपने को किसान कहने लगे हैं। इसका कारण है खेती में कर का नहीं लगना। वे सच्चे किसान नहीं, जोड़ धंधेबाज हैं। किसानों की भलाई के नाम पर जो योजनाएं हैं, दरअसल वे केवल इन कथित किसान नामधारी जोड़ धंधियों को लाभ देती हैं।

इस मौके पर सामयिक परिस्थिति पर भी कुछ टिप्पणियां आयीं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और पहलकदमियों को कुचलने का दौर चल रहा है। धर्म और जाति के विद्वेष को बढ़ाकर जनता में फूट डाला जा रहा है। विभिन्न आंदोलनों को अपने समक्ष हाजिर इन चुनौतियों से नई दृष्टि और ईमानदारी के साथ निबटना होगा।

यहीं गांधी जेपी धारा के एक अन्य कार्यक्रम का संक्षिप्त उल्लेख भी अप्रासंगिक नहीं होगा। 7 अक्टूबर को नागपुर में ही एक कार्यक्रम में चन्द्रकांत वानखेडे ने कहा कि गांधी को मजबूरी का नाम बताना नितांत बेतुकी बात है। जिस व्यक्तित्व की प्रतिमा 143 देशों में है, जिस व्यक्ति की जिन्दगी पर सर्वाधिक साहित्य है, जिसने 150 साल से ज्यादा वक्त से जमे विश्व महाशक्ति को उखाड़ फेंका, उसे मजबूरी के साथ जोड़ना एक ठोस सच को झुठलाना है।

–ज्ञानेन्द्र कुमार

कविता

खूंटों के जंगल में

❑ श्याम बहादुर 'नम्र'

इस समय हम खूंटों के
जंगल में खड़े हैं
हमारे आस-पास बहुत-से
खूंटे गड़े हैं,
लगता है, वे हमें बंधने की
फिराक में पड़े हैं।
कुछ खूंटे नये हैं, कुछ पुराने हैं,
कुछ अजनवी हैं,
कुछ जाने-पहचाने हैं।
कुछ पे लगी है पालिश,
कुछ घुन रहे हैं,
कुछ के बारे में ऐसा सुन रहे हैं–
कि ये रंग बदलते रहते हैं,
कुछ जमीन पर हैं, और
कुछ पहियों पर चलते रहते हैं,
कुछ नये खूंटे पुराने लगते हैं,
कुछ पुरानों में नयापन है,
सबके रंग-बिरंगे फंदे हैं,
अपना-अपना विज्ञापन है।

इनमें से कुछ खूंटे शांत,
कुछ बवाली हैं,
कुछ के फंदे भरे, कुछ के खाली हैं,
और गाली देते हुए आपस में,
ये लाल फंदे लहरा रहे हैं,
इनमें से कुछ व्यवस्था और
कुछ विकास के खूंटों का
चक्कर लगा रहे हैं।

कुछ खूंटे बहुत दिनों से
त्याग का राग अलाप रहे हैं,
सत्य-अहिंसा से दुनियां को
नाप रहे हैं।
किन्तु अभी तक खुद को
नहीं नाप पाये हैं,
सत्य का अर्थ भी नहीं
भाँप पाये हैं।
ये निरपेक्षता की बात करते हैं।
हर जगह एकता की बात करते हैं।
किन्तु ये खूंटे अब चिटक रहे हैं,
इनके फंदे दूसरे झटक रहे हैं।

एक खूंटा जो साम्प्रदायिकता की
जमीन में गड़ा है,
उसके गले में राष्ट्रवाद का
फंदा पड़ा है।

वह सम्प्रदाय और राष्ट्र को
एक मानता है,
किन्तु राष्ट्र के निवासियों को
अनेक मानता है,
वैसे इस खूंटे का राज हर कोई
जानता है।
वो वाला खूंटा व्यवस्था का है,
खूंटापन की चरम अवस्था का है।
वह तानाशाही की फर्श पर खड़ा है,
उसके ऊपर लोकतंत्र का
मुलम्मा चढ़ा है।
वह जितनी बार लोकतंत्र की
बात करता है,
लोकतंत्र उतनी बार मरता है।

उसके फंदे बड़े आकर्षक
और भयंकर डराऊ हैं,
किन्तु बंधने वालों के लिए
बेहद कमाऊ हैं।

उसके अस्सी प्रतिशत फंदे
अपराधियों के लिए आरक्षित हैं,
जो भी इसमें बंधे हैं,
पूरी तरह सुरक्षित हैं।

सभी खूंटे हमें बुलाते हैं,
आकर्षक फंदों से हमको लुभाते हैं,
कभी-कभी दूसरे खूंटों से डराते हैं।
लेकिन यह कहने पर,
'बंधना नहीं है मुझे, मैं तो बड़ी
मुश्किल से
खूंटों से छूटा हूं,
सब खूंटे एक साथ मुझपर
इशारा कर
जोर-जोर कहते हैं
मैं भी एक खूंटा हूं। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।